मंजरी

स्त्री के मन की

वर्ष अक्टूबर, 2014 अंक 2

हमारी बात

मंजरी : स्त्री के मन की

संरक्षण

डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर, समाज शास्त्र, पटना विवि

प्रोफेसर डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
परियोजना प्रबंधक, एक्शन एड, बिहार

डा. शरद कुमारी
समाज सेविका

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

उन्नीसवीं शताब्दी से ही, जबसे महिलाओं के मुद्दे सामने आने लगे, सामाजिक बदलाव में शामिल होने के लिए महिलाओं में उत्सुकता और जागरूकता देखी जाने लगी। बीसवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते तक यह उत्सुकता सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं के अनेक तरह से भागीदार बनने के तौर पर सामने आई। आज महिलाओं की सक्रियता अच्छी सरकार से लेकर बलात्कार के खिलाफ आंदोलनों तक तो घरेलू हिंसा, दहेज, मिलावट, कालाबाजारी और महंगाई तक के खिलाफ चलाए जा रहे अभियानों में देखी जा सकती है। वे जीवन के हर पहलू चाहे वो सामाजिक हों, आर्थिक या फिर राजनीतिक, अन्याय और भेदभाव के खिलाफ अपनी आवाज को बुलंद कर रही हैं।

वर्षों तक महिलाओं की भूमिका कांग्रेस पार्टी में एक कार्यकर्ता के रूप में और राष्ट्रगान गाने तक ही सीमित रही लेकिन तस्वीर बदलने लगी जब महिलाओं ने समाज में बदलाव लाने में अपने महत्व को समझा और अपने अधिकारों को जानना शुरू किया। 1917 में एनी बेसेंट कांग्रेस पार्टी की पहली महिला अध्यक्ष बनीं। उनके बाद 1925 में सरोजिनी नायडू और 1933 में नेल्ली सेनगुप्ता ने पार्टी की बागडोर संभाली। आजादी के बाद के वर्षों में इंदिरा गांधी ने कांग्रेस को मजबूती प्रदान की। हालांकि इंदिरा गांधी के सामने पारंपरिक आदर्शों और प्रतीकों को महिलाओं के लिए नई ऊर्जा और प्रेरणा के स्रोतों में बदलने की बड़ी चुनौती थी फिर भी इंदिरा के नेतृत्व में बिना किसी हिंसा के महिलाओं को राष्ट्रीय राजनीति में लाने में शानदार सफलता मिली। हर क्षेत्र से चाहे वो शहरी हो या ग्रामीण, पढ़ी-लिखी या अशिक्षित, अमीर हो या गरीब, युवा या बुजुर्ग, महिलाओं ने आजादी का मतलब जाना और स्वतंत्रता की लड़ाई में शामिल हुईं। वे न केवल आजादी के संघर्ष की भागीदार बनीं बल्कि साथ ही साथ मतदान करने के अपने अधिकार को भी समझ पाईं।

वर्तमान में पूरे विश्व की संसद में महिलाओं की संख्या 18.4 फीसद है। रवांडा इस वक्त अपनी संसद में महिलाओं को 56.3 फीसद प्रतिनिधित्व देकर पहले नंबर पर है और उसने स्वीडन (47.3 फीसद) को दूसरे स्थान पर ला दिया है। राजनीति में लैंगिक संतुलन के लिए महिलाओं को आरक्षण देकर उन्हें राष्ट्रीय राजनीति में शामिल कर रवांडा ने एक उदाहरण पेश किया है। वहीं दूसरी ओर, भारत संसद में महिलाओं की संख्या को लेकर आंकड़ों के लिहाज से बेहद पीछे है और सूची में उसका स्थान बहुत नीचे है। देश की संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व महज 11 फीसद है जो कि विश्व औसत और यहां तक कि सब सहारा अफ्रीका से भी बहुत कम है जबकि वह अरब देशों से आगे निकलने की जद्दोजहद में है। ऐसे में तय है कि स्थिति को सुधारने के लिए कुछ न कुछ करना होगा, बल्कि पहले से भी किया जाना चाहिए था। सवाल ये है कि क्या बदलाव संसद के स्तर पर होना चाहिए और क्या आरक्षण इसका समाधान हो सकता है?

हमें आरक्षण विधेयक को समाधान के तौर पर नहीं देखना चाहिए बल्कि यह एक तरीका है महिलाओं की संख्या बढ़ाकर उन्हें निर्णय लेने में भागीदार बनाने का। यह एक माध्यम है निर्णायक मंडल में एक नई स्त्रीवादी सोच को स्थापित करने का। उनके सोचने का ढंग अलग है, मुद्दों को सुलझाने का तरीका भिन्न है और उनकी शक्तियां अलग हैं। समान लैंगिक प्रतिनिधित्व वाली सरकार ज्यादा बेहतर शासन करती है, इसे प्रमाणित करने के लिए आशावादी हो या निराशावादी, हर इंसान के पास एक कारण जरूर मौजूद होगा।

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादन

दीपिका

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171
ई-मेल
magazinemanjari@gmail.com
www.emanjari.com

उदाहरण के लिए हमारे देश में कई ऐसे मसले हैं जो स्त्रियों से जुड़े हैं (सती? इसकी व्याख्या करना जरूरी नहीं लगता क्योंकि पाठक इस प्रथा के बारे में शायद मुझसे भी ज्यादा जानते हैं)। ऐसे मसले जिनका कोई निदान नहीं निकल पाया है। क्योंकि, ये मुद्दे हमेशा नजरअंदाज किये जाते रहे हैं। अगर सरकार में महिला प्रतिनिधि होतीं तो हो सकता है कि आज स्थिति भिन्न होती। अब भी देर नहीं हुई। क्यों नहीं तस्वीर के दूसरे पहलू को सामने लाया जाय और क्यों नहीं महिलाओं को सामने आने दिया जाय और उन्हें खुद अपनी हालत सुधारने का मौका दिया जाय। हम उन्हें आरक्षण के जरिये एक मौका देकर देखें कि वे खुद को सरकार का महत्वपूर्ण अंग साबित कर पाती हैं या नहीं। हमें सरकार में उनकी जरूरत है और इसके लिए आरक्षण जरूरी है ताकि समान लैंगिक भागीदारी के साथ हमें बेहतर भविष्य मिल सके। यह तभी संभव है जब राजनीति में महिलाओं के प्रवेश की बाधाएं हटें। तभी देश केवल महिला सशक्तिकरण नहीं बल्कि पूर्ण सशक्तिकरण की ओर बढ़ सकता है।

पत्रिका के इस अंक में (संसद में महिलाओं को 33 फीसद आरक्षण) देश में सामाजिक और राजनीतिक बदलाव लाने की कोशिश में लगे महिला समूहों का विश्लेषण है। देश में महिलाओं के लिए आरक्षण की शुरुआत और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के ऐतिहासिक पहलुओं को भी इस अंक में सामने लाने की कोशिश की गई है। यह अंक महिलाओं के लिए आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में तर्कों को सामने रखते हुए मौजूदा राजनीतिक संरचना में सेंध लगाता है।

नीना श्रीवास्तव

स्रोत : इंडियाटुगेदर.कॉम, हिन्दुस्तान टाइम्स, द संडे इंडियन, एकेडमिया.एडु.इन, आईलवइंडिया.कॉम, फोर्ब्स इंडिया मैगजीन, एक्शन एड, हेल्पलाइन, गुगल, गेटीइमेज.कॉम, इक्विटी फाउंडेशन, दि हंगर प्रोजेक्ट, विकीपीडिया

अनुक्रमणिका

हमारी बात

- संपादकीय

सार संक्षेप

- चार दशक पहले उठी प्रतिनिधित्व की मांग

इतिहास के आइने में

- अंग्रेजी हुकूमत ने दी थी अलग पहचान
- पुरानी रही है देश में आरक्षण की परंपरा

बड़ा सवाल

- आरक्षण के लिए कैसे हो सीटों का चयन

अफसोस

- 2009 में 59, 2014 में सिर्फ 61!

अभिव्यक्ति

- पंचायत की जीत को दोहराने की जरूरत
  प्रो. विभूति पटेल
- ये किसकी सियासत है ?
  अमु जोसेफ
- महिला नेतृत्व बनाम अप्रतिनिधित्व
  रंजना कुमारी

बिहार की बेटियां

- राजनीति में पाया मुकाम

`राज्य से

- राजनीति के खेल में मोहरा बनतीं महिलाएं
  कीर्ति
- कानून नहीं, उनका क्रियान्वयन होना जरूरी
  डा. शरद कुमारी
- बंदिशों के बावजूद जारी हैं पहलकदमियां
  शाहिना परवीन

हमारी प्रतिनिधि

- गांव-गांव तक बहती जीवन की धारा

मुद्दा

- जरूरत मौजूदा नीतियों को मांजने की

चुनौती

- संख्या बढ़ी मगर साहस नहीं

बेमिसाल

- नरेंद्र मोदी की कैबिनेट के शानदार 7

तस्वीर के दो पहलू

- सहयोगी भी, विरोधी भी बने पुरुष

चेंजमेकर्स

- जिन्होंने मोड़ दी जीवन की दिशा

सार संक्षेप

चार दशक पहले उठी प्रतिनिधित्व की मांग

राजनीति में महिला अधिकारों की बात सबसे पहले 1976 में सामने आई जब सीएसडब्ल्यूआई ने अपनी रिपोर्ट में इसका जिक्र किया। इसके पहले महिला अधिकारों का मतलब सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य तक ही सीमित था लेकिन सीएसडब्ल्यूआई ने कहा कि देश की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी समान रूप से होनी चाहिए। खास कर आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं में उन्हें स्थान मिलना चाहिए और इसके लिए आरक्षण की नीति अपनाई जानी चाहिए। इसके बाद 1988 में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय योजना के तहत यह सुझाव आया कि राजनीतिक इकाइयों के सभी स्तरों पर महिलाओं के लिए तीस फीसद कोटा की नीति अपनाई जाए। हालांकि तब महिला समूहों ने इस बात पर जोर दिया कि आरक्षण को गांव की पंचायतों तक सीमित रखा जाय ताकि ग्रामीण महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़े। तमाम क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम 1993 में सामने आया जब इस मामले को लेकर संविधान का 73वां और 74वां संशोधन किया गया।

शिक्षित महिलाओं को दिया 'बालकटी औरत' का नाम

1995 में आरक्षण का सवाल एक बार फिर उठा लेकिन तब मुद्दा था संसद में महिलाओं के आरक्षण का। सतही तौर पर सभी दलों ने इसका समर्थन किया और 1996 में 11वीं लोकसभा चुनाव के दौरान लगभग सभी ने अपने-अपने घोषणापत्र में महिलाओं के लिए संसद में 33 फीसद आरक्षण दिये जाने की घोषणा भी की लेकिन जैसे ही 1997 में बिल को सदन के पटल पर लाया गया, राजनीतिक दलों में जबर्दस्त मतभेद देखने को मिला। मतभेद मुख्य रूप से दो बिंदुओं पर थे-पहला, निचली जाति की महिलाओं को आरक्षण और दूसरा-संभ्रांत वर्ग की महिलाओं का प्रभुत्व। ज्यादातर महिला समूहों ने जाति के मामले को विभाजनकारी माना जबकि कई ने संभ्रांत वर्ग की महिलाओं को

1972 : संसद में महिलाओं की उपस्थिति पर विचार करने को लेकर देश में पहली बार एक कमेटी सीएसडब्ल्यूआई का गठन किया गया।

1976 : सीएसडब्ल्यूआई ने अपनी रिपोर्ट शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय को सौंपी जिसमें संसद में महिलाओं की कम मौजूदगी पर चिंता जाहिर की गई और आरक्षण के जरिये इसे बढ़ाने का सुझाव दिया गया।

1993 : संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों के जरिये पंचायतों और नगर निकायों में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं।

12 सितम्बर, 1996 : केंद्र की एचडी देवेगौड़ा सरकार ने संविधान के 81वें संशोधन के जरिये संसद में महिलाओं के आरक्षण से संबंधित विधेयक को सदन में रखा।

गौर कीजिए

संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में राजनीति में आई महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामले ज्यादा हैं।

संसद में अतिरिक्त सुविधा दिये जाने पर आपत्ति जताई। जनता दल यूनाइटेड के राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव ने बिल का घोर विरोध करते हुए कहा था " क्या आपको लगता है कि ये बालकटी महिलाएं हमारी औरतों के हक के बारे में बोलेंगी।"1996 से लेकर 1999 तक हर साल महिलाओं को आरक्षण देने वाले विधेयक को सदन में रखा जाता रहा और हर बार इसके विरोध में सभ्य पुरुष सांसद पेपर की छीना-झपटी, शोर-शराबा और धक्का-मुक्की करते रहे।

राजनीतिक परिवार से थीं ज्यादातर महिला सांसद

दरअसल, 1991-1996 की दसवीं लोकसभा में मौजूद 39 महिलाएं मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली थीं जिनका नारीवादी आंदोलनों से न के बराबर नाता था। ज्यादातर महिलाएं अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण राजनीति में थीं तो कई उस दौरान चल रहे छात्र और नागरिक आंदोलनों की वजह से राजनीति में सक्रिय हुई थीं। कुछ महिलाओं को राज्यों की ओर से प्रतिनिधित्व बढ़ाने के विचार से भेजा गया था। हालांकि तब की संसद में भी जातिवाद हावी था और अधिकतम महिलाएं उच्च जाति का प्रतिनिधित्व करती थीं। उदाहरण के लिए कुल आबादी में ब्राह्मणों की तादाद जहां मात्र 5.52 फीसद थी वहीं संसद में ब्राह्मण महिलाओं की तादाद 17.14 फीसद थी। मगर जातिगत असंतुलन को दिखाने वाला यह आंकड़ा बहुत कुछ तत्कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि को भी जाहिर करता है। जैसे कि ज्यादातर ब्राह्मण महिलाएं कम्युनिस्ट पार्टी से थीं और उनका राजनीतिक करियर राजनीतिक आंदोलनों, राष्ट्रवादी अभियानों और आपातकाल के दौरान हुए संघर्षों की देन थी। ऐसे में आरक्षण का निम्न जाति की महिलाओं के संसद में पदार्पण पर कोई खास असर होगा, कहना मुश्किल था। क्योंकि जब अनुसूचित जाति के लिए जब संसद में 22 फीसद सीटें आरक्षित कर दी गई थीं तब भी उस जाति की केवल 4.1 फीसद महिलाएं ही संसद तक पहुंच पाईं। 1996 में हुए एक अध्ययन में यह बताया गया कि तब हर तीन में से एक महिला स्थानीय चुनावों के प्रति उदासीन थी। जाहिर तौर पर यह महिलाओं में व्याप्त परंपरागत कमियों के कारण था जिन्हें दूर करने की कोई खास प्रशासनिक या सामाजिक पहल नहीं की गई थी। उनमें से एक थी अशिक्षा तो दूसरी राजनीति से महिलाओं को अलग-थलग रखने की नीति।

9 दिसम्बर, 1996 : संयुक्त संसदीय समिति ने आरक्षण विधेयक पर एक रिपोर्ट संसद में पेश की।

26 जून, 1998 : अटल बिहारी वाजपेयी की अगुवाई वाली राजग सरकार ने 84वें संविधान संशोधन के साथ आरक्षण बिल को लोकसभा में रखा।

22 नवम्बर, 1999 : राजग सरकार ने एक बार फिर बिल को पेश किया लेकिन इस पर बहुमत नहीं जुटा पाई।

मई, 2004 : केंद्र की संप्रग सरकार ने घोषणा की कि वह अपने साझा न्यूनतम कार्यक्रम के तहत महिला आरक्षण बिल को पास कराने के लिए प्रतिबद्ध है।

6 मई, 2008 : राज्यसभा में बिल को रखा गया जहां से इसे कानून एवं न्याय मंत्रालय की स्टैंडिंग कमेटी के पास भेज दिया गया।

17 दिसम्बर, 2009 : स्टैंडिंग कमेटी ने अपनी रिपोर्ट रखी जिसे राज्यसभा और लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। दोनों सदनों में राजद, समाजवादी पार्टी और जदयू ने बिल का कड़ा विरोध किया।

25 फरवरी, 2010 : केन्द्रीय कैबिनेट ने संसद में महिला आरक्षण बिल को पास किया।

8 मार्च, 2010 : राज्यसभा में बिल को रखा गया। राजद और सपा के सरकार से अपना समर्थन वापस लेने की धमकी के कारण बिल पर मतदान नहीं हो पाया।

9 मार्च, 2010 : राज्यसभा में बिल को पास कर दिया गया।

गौर कीजिए

देश में राजनीति में सक्रिय महिलाओं में से 45% शारीरिक तौर पर प्रताड़ित होती हैं, 45% को धमकी दी जाती है और 45% को अपशब्द कहा जाता है।

सार संक्षेप

सदन में फाड़ी गईं बिल की प्रतियां

वर्ष, 2004 में जब कांग्रेसनीत संप्रग सरकार सत्ता में लौटी तो उसने आते ही महिला आरक्षण बिल को पास करने की घोषणा की। 2008 में तमाम विरोधों के बावजूद सरकार ने इसे राज्यसभा में पेश किया। बिल का विरोध कर रही समाजवादी पार्टी और जदयू सहित कई दूसरी पार्टियों ने सदन में भारी हंगामा किया। कानून मंत्री हंसराज भारद्वाज के हाथों से बिल की कॉपी छीनने और फाड़ने की कोशिश की गई। केंद्रीय मंत्री रेणुका चौधरी ने इस आपाधापी में समाजवादी पार्टी के सांसद अबु आसिम आजमी को जोर से धक्का दे दिया। कानून मंत्री भारद्वाज ने किसी तरह महिला सांसदों को आगे कर खुद को विरोध कर रहे सांसदों के कोप से बचाया। दो महिला मंत्रियों कुमारी शैलजा और अंबिका सोनी तथा कांग्रेस की महिला सांसद जयंती नटराजन और अलका बलराम क्षत्रिय को उनके आस-पास की सीटों पर बिठाया गया था। हालांकि विरोध इतना तीव्र था कि सरकार उस समय बिल पर कोई आम राय नहीं बना पाई लेकिन सरकार ने बिल को स्टैंडिंग कमेटी को सौंप कर इसके आगे बढ़ने का रास्ता प्रशस्त कर दिया। उस समय सदन में समाजवादी पार्टी व अन्य विरोधी दलों के ड्रामे को देखने के लिए तब तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह तथा विपक्ष के नेता जसवंत सिंह भी वहां मौजूद थे। इससे पहले, 1998 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने इस विधेयक को सदन में पेश करने की कोशिश की थी तो राष्ट्रीय जनता दल के सुरेंद्र प्रसाद यादव कड़ा विरोध करते हुए वेल में पहुंच गये और अध्यक्ष जीएसी बालयोगी के हाथों से बिल की प्रति छीनकर उससे फाड़ डाला था। बिल की प्रतियां फाड़ी जाती रहीं और चुने हुए माननीय प्रतिनिधि बवाल करते रहे लेकिन बिल धीमी गति से ही सही आगे बढ़ता रहा। 1999 में राजग सरकार ने इसे एक बार फिर सदन में रखा। 2003 में विधेयक को दो बार संसद में लाया गया और सर्वदलीय बैठक के बाद भाजपा प्रवक्ता विजय मल्होत्रा ने एक बयान में कहा कि हम बिल को इसी सत्र में पारित कराना चाहते हैं, जनमत के साथ या उसके बजाय। मई 2003 में लोकसभा अध्यक्ष मनोहर जोशी ने बिल को स्थगित करने की घोषणा की। ऐसा बिल का विरोध कर रहे दलों के जबर्दस्त प्रदर्शन के कारण हुआ। प्रश्नकाल के दौरान विरोधी सांसद वेल में आ गए और जोर देकर कहा कि वे बिल को मौजूदा स्वरूप में किसी भी हालत में पास नहीं होने देंगे।

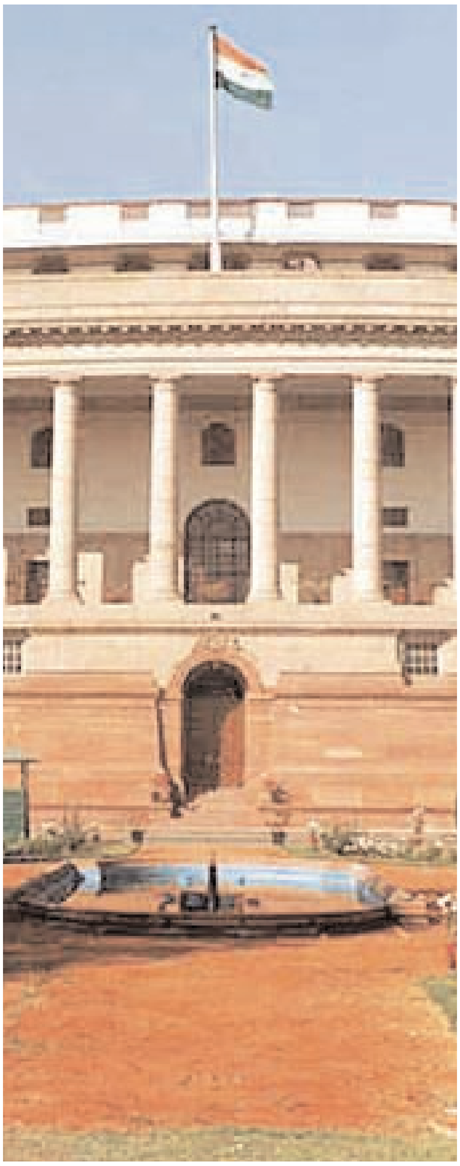

संप्रग ने सीएमपी में दी जगह

वर्ष 2004 में आम चुनाव से ठीक पहले अटल बिहारी वाजपेयी ने बिल को पास नहीं होने देने के लिए कांग्रेस को जिम्मेदार ठहराया और कहा कि अगर उनकी सरकार बनी तो वे इस बिल को जरूर पास करके दिखाएंगे। लेकिन 2004 में कांग्रेसनीत संप्रग ने सत्ता में जोरदार वापसी की और उन्होंने महिला आरक्षण बिल को अपने कॉमन मीनिमम प्रोग्राम में जगह दिया। संप्रग सरकार ने कहा कि वह राज्य विधानसभाओं और संसद में महिलाओं को 33 फीसद आरक्षण दिलाने वाले विधेयक को पास कराने के लिए अगुवा का काम करेगी। 2005 में भाजपा ने बिल के पक्ष में सरकार को पूर्ण समर्थन देने की घोषणा की। हालांकि पार्टी की सांसद उमा भारती और कुछ अन्य ने इसका विरोध किया। उनकी मांग आरक्षण के अंतर्गत ओबीसी और मुस्लिम महिलाओं को आरक्षण देने की थी। 2008 में एक बार फिर बिल को सदन के पटल में रखा गया लेकिन अंततः राज्यसभा में इसे 9 मार्च, 2010 को पारित कराया जा सका।

राष्ट्रीय जनता दल के सुरेंद्र प्रसाद यादव कड़ा विरोध करते हुए वेल में पहुंच गये और अध्यक्ष जीएसी बालयोगी के हाथों से बिल की प्रति छीनकर उससे फाड़ डाला था। बिल की प्रतियां फाड़ी जाती रहीं और चुने हुए माननीय प्रतिनिधि बवाल करते रहे लेकिन बिल धीमी गति से ही सही आगे बढ़ता रहा।

गौर कीजिए

अध्ययन के मुताबिक कर्नाटक, दिल्ली और उत्तर प्रदेश में महिला नेताओं को ज्यादा प्रताड़ित किया जाता है।

इतिहास के आइने में

अंग्रेजी हुकूमत ने दी थी अलग पहचान

देखा जाय तो भारतीय राजनीति में 'आरक्षण' शब्द की उत्पत्ति पहले पहल 1909 में तब हुई जब अंग्रेज सरकार ने अल्पसंख्यकों, मुस्लिमों, सिखों और एंग्लो इंडियनों के लिए चुनाव में हिस्सेदारी का नियम बनाया। 1919 में इसका विस्तार हुआ और चुनाव में हर वर्ग को अपने नाम पर प्रतिनिधित्व करने का मौका मिला। असल में अंग्रेजी हुकूमत ने गोलमेज सम्मेलन के दौरान 1932 में महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद धर्म और जाति के आधार पर आरक्षण का प्रस्ताव भी पारित कर दिया था और 1935 में भारतीय सरकार में अल्पसंख्यकों के लिए कोटा नीति लागू कर दी थी। इस तरह देश में सबसे पहले 1935 में आरक्षण का कानून लागू हुआ।

अंग्रेजी हुकूमत ने गोलमेज सम्मेलन के दौरान 1932 में महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद धर्म और जाति के आधार पर आरक्षण का प्रस्ताव भी पारित कर दिया था और 1935 में भारतीय सरकार में अल्पसंख्यकों के लिए कोटा नीति लागू कर दी थी।

आजादी यानी 1947 के बाद दलित नेता और बाद में संविधान निर्माता बने डा. बी आर अंबेदकर ने भी दलितों और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण को जरूरी बताया ताकि समाज के हर क्षेत्र में वे समान रूप से प्रगति कर सकें। अपनी इस सोच को उन्होंने संविधान निर्माण के दौरान ठोस रूप प्रदान किया और नौवीं अनुसूची तथा धारा 330 और 331 के तहत आरक्षण को परिभाषित किया। इस तरह आरक्षण संविधान में वर्णित समानता के मौलिक अधिकारों के अपवाद के रूप में लाया गया जहां शोषित अनुसूचित जातियों और अछूत माने जाने वाली जनजातियों को अत्यधिक महत्व देने की बात की गई। जहां तक महिलाओं की बात है तो यह मान लिया गया कि संविधानप्रदत्त अधिकारों के तहत हर क्षेत्र में महिलाओं का विकास भी स्वतः होता जाएगा। चूंकि आजादी के पहले देश की अधीनता को महिलाओं की बुरी स्थिति के लिए जिम्मेदार माना जाता था इसलिए आजादी के बाद यह समझ लिया गया कि अब सब ठीक हो जाएगा। हालांकि तब के लोगों की वह सोच महिलाओं के मामले में उतनी सटीक साबित नहीं हुई। आजादी के 67 साल बीत गये मगर भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी बमुश्किल 11 फीसद तक ही पहुंच पाई है। राजनीतिक दलों की कथनी और करनी में फर्क साफ नजर आता है। सभी राजनीतिक दल अपने घोषणापत्रों में महिलाओं के उत्थान की बात बढ़ा-चढ़ा कर करते हैं लेकिन चुनावों में टिकट देने के समय कन्नी काट जाते हैं।

बीसवी शताब्दी के शुरुआती दशकों का इतिहास महिला संगठनों के निर्माण और उनके आंदोलनों के लिए जाना जाता है। इस दौरान पढ़ी-लिखी महिलाओं के कई नये संगठनों का जन्म हुआ जिन्होंने नारी स्वतंत्रता की लड़ाई को आगे बढ़ाने में सहायक का काम

गौर कीजिए

67 फीसद महिला राजनेताओं को दूसरी पार्टी के नेता प्रताड़ित करते हैं जबकि 58 फीसद को पार्टी के भीतर ही डराया धमकाया जाता है।

इतिहास के आइने में

किया। ऐसा कहा जाता है कि 20वीं शताब्दी ने घर से बाहर निकली इच्छाओं वाली नई महिलाओं को जन्म दिया। यह कारण भी रहा कि 1930 के दशक में अंग्रेजी सरकार ने महिलाओं को अलग प्रतिनिधित्व देने की नीति पर जोर दिया। हालांकि राष्ट्रवादी नेताओं ने इसे अंग्रेजों की बांटो और राज करो की नीति के तौर पर देखा लेकिन महिलाओं को इससे अलग स्थान बनाने का मौका जरूर मिल गया। आजादी के पहले की आम राय समान मौलिक अधिकारों के लिए थी जिसमें किसी खास वर्ग, लिंग या धर्म को विशेष स्थान देने का विरोध किया जाता था। यही वजह रही कि तब के प्रमुख महिला संगठनों एआईडब्ल्यूसी, डब्ल्यूआईए और एनसीडब्ल्यू ने भी इस नीति का विरोध किया। और यह विरोध सबके लिए था, न केवल महिलाओं के लिए।

आजादी के बाद बने संविधान ने स्त्री-पुरुष की समानता को ध्यान में रखते हुए राजनीति में महिलाओं को मिले विशेष अधिकार को समाप्त

कर दिया। उस समय किसी महिला संगठन ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया। 1957 में स्थानीय सरकारों के लिए नई प्रक्रिया अपनाए जाने के दौरान एक बार फिर राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी पर ध्यान दिया गया। तब यह सुझाव सामने आया कि हर स्थानीय निकाय कम से कम दो महिलाओं को स्थान देगा। 1959 में जब कानून पारित हुआ तो इस बारे में कोई ठोस निर्णय तो नहीं लिया जा सका, हां इतना जरूर कहा गया कि भले ही कोई महिला चुनकर नहीं आ पाती है फिर भी लोकल निकाय कुछ महिलाओं को नामित जरूर करें। फिर भी तत्कालीन सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी और महिला संगठनों में यह धारणा बनी रही कि संसद में महिलाओं को लाने के लिए अलग से प्रयास करने की जरूरत नहीं है। नतीजा, लंबे समय तक इस दिशा में कोई ठोस पहल नहीं की गई। 1970 और 80 के दशक में एक बार फिर महिला आरक्षण का मामला उठा जब अंतरराष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्र ने राष्ट्रों की प्रगति में महिलाओं के योगदान को समझा और इसके लिए सदस्य देशों को कदम उठाने के लिए प्रेरित किया। 1975 में मेक्सिको में आयोजित एक कांफ्रेंस में पूरी दुनिया में महिलाओं की स्थिति पर विचार किया गया और इस दशक को महिलाओं के नाम किया गया। इसी दौरान भारत में भी संयुक्त राष्ट्र के विचारों की छाप पड़नी शुरू हो गई थी और 1972 में महिलाओं की भारत में स्थिति पर पहले आयोग (सीएसडब्ल्यूआई) का गठन किया गया। वैसे तो इस आयोग का गठन देश में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पर गौर करने के लिए किया गया था लेकिन जब आयोग ने पूरे देश में दौरा कर पांच सौ से अधिक महिलाओं से बात की तो पाया कि ज्यादातर ने राज्य विधानसभाओं और संसद महिलाओं की उपस्थिति बढ़ाने पर जोर दिया और इसके लिए आरक्षण को एकमात्र रास्ता बताया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इसके बारे में लिखा लेकिन तब भी ज्यादातर सदस्यों ने आरक्षण की बात को यह कहकर टालने की कोशिश की कि यह भारत के समान नागरिक अधिकार के सिद्धांत के विरुद्ध है।

1970 और 80 के दशक में एक बार फिर महिला आरक्षण का मामला उठा जब अंतरराष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्र ने राष्ट्रों की प्रगति में महिलाओं के योगदान को समझा और इसके लिए सदस्य देशों को कदम उठाने के लिए प्रेरित किया। 1975 में मेक्सिको में आयोजित एक कांफ्रेंस में पूरी दुनिया में महिलाओं की स्थिति पर विचार किया गया और इस दशक को महिलाओं के नाम किया गया।

वैसे यह बात मान ली गई कि ग्रामीण महिलाओं को स्थानीय निकायों में स्थान मिलना जरूरी है और इसके लिए उन्हें आरक्षण का सहारा देने जरूरी है। आयोग ने यह सुझाव दिया कि हर गांव में महिलाओं द्वारा चुनी गयी एक महिला सभा हो जो गांव में महिलाओं और बच्चों के लिए किये जाने वाले कल्याणकारी और विकास योजनाओं के प्रबंधन और क्रियान्वयन की जिम्मेदारी ले और इसे स्थानीय सरकार का विस्तारित रूप माना जाय। इसके साथ-साथ इसने राजनीतिक दलों को भी इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे चुनाव के समय अधिक से अधिक महिलाओं को टिकट दें और इसके लिए थोड़े हद तक कोटा का सहारा लें। राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं को भी स्थान मिलना चाहिए, यह बात लोगों के जेहन में धीरे-धीरे ही सही मगर आने लगी। इसे और हवा दी 1976 में आई सीएसडब्ल्यूआई की रिपोर्ट ने जिसमें साफ कहा गया कि संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को आरक्षण मिलना चाहिए।

गौर कीजिए

राजनीति में पहली बार कदम रखने वाली महिलाओं को घर और पार्टी दोनों में अपमानित किया जाता है।

इतिहास के आइने में

पुरानी रही है देश में आरक्षण की परंपरा

लोकसभा में महिलाओं को आरक्षण देने पर यूं तो बवाल मच रहा है लेकिन हमारे देश में आरक्षण देने और पाने का यह कोई पहला मौका नहीं है। भारत में आरक्षण का पुराना इतिहास रहा है।

1882 : महात्मा ज्योतिराव फुले ने समाज के सभी वर्गों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की मांग की जिसके बाद हंटर कमीशन गठित की गई।

1902 : कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति साहूजी महाराज ने पिछड़े और गरीब वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण की सिफारिश की ताकि उन्हें भी राज्य प्रशासन में शामिल होने का पूरा मौका मिल सके। इस तरह 1902 में गरीब और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए नौकरी में पचास फीसद आरक्षण की नीति लागू हुई। देश में यह पहला मौका था जब गरीब वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण से संबंधित सरकारी अधिसूचना जारी की गई थी।

1908 : ब्रिटिश सरकार और प्रशासन में कम उपस्थिति दर्ज कराने वाली जातियों और समुदायों के लिए आरक्षण लागू करने का प्रस्ताव रखा गया।

1909 : गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1909 के तहत आरक्षण के प्रावधानों को मूर्त रूप दिया गया। इसे मार्ले-मिंटो सुधार के नाम से भी जाना गया।

1919 : मार्ले-मिंटो सुधारों के तहत कुछ नये प्रावधान भी जोड़े गये।

1921 : मद्रास प्रेसीडेंसी ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें गैर ब्राह्मणों को 44 फीसद, ब्राह्मणों को 16 फीसद, मुस्लिमों को 16 फीसद, एंग्लो इंडियन को और ईसाइयों को 16 फीसद तथा अनुसूचित जाति को आठ फीसद आरक्षण का प्रावधान रखा गया।

1935 : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पिछड़े वर्गों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाने के लिए पूना पैक्ट के नाम से एक संकल्प पारित किया जो बाद में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 बना।

1947 : देश आजाद हुआ और डा. बीआर अंबेडकर संविधान निर्माता समिति के चेयरमैन बने। 1950 में देश का संविधान प्रभाव में आया।

1951 : मद्रास राज्य बनाम चंपकम दोराईराजन मामले में कोर्ट ने कहा कि जाति आधारित आरक्षण संविधान की धारा 15 (1) का उल्लंघन करता है।

1953 : सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के अध्ययन के लिए कालेलकर कमीशन का गठन हुआ।

1963 : कोर्ट ने एमआर मामले में पचास फीसद आरक्षण को मान्यता दी। तमिलनाडु ने इसे बढ़ाकर 69 फीसद किया जबकि राजस्थान ने 68 फीसद आरक्षण लागू किया।

1979 : देश में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के अध्ययन के लिए मंडल कमीशन का गठन किया गया। 1980 में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट सौंपी और शिक्षा में पहले से चले आ रहे 22 फीसद आरक्षण को बढ़ाकर 49.5 फीसद करने की सिफारिश की। उस समय मंडल कमीशन ने देश के पिछड़े वर्गों की जो सूची बनाकर दी थी वर्ष 2006 तक उसमें साठ फीसद का बढ़ावा हो गया और पिछड़े वर्गों की संख्या बढ़कर 2297 हो गई।

1990 : देश में विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार ने मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू कर दिया।

1991 : नरसिम्हा राव सरकार ने देश की अगड़ी जाति के गरीबों के लिए अलग से दस फीसद आरक्षण लागू किया।

1995 : संविधान के 77वें संशोधन द्वारा देश की संसद ने अनसूचित जाति और जनजातियों को प्रोन्नति में आरक्षण देने का रास्ता साफ कर दिया।

2005 : सुप्रीम कोर्ट की सात सदस्यीय बेंच ने कहा कि राज्य सरकारें अल्पसंख्यक अथवा गैर अल्पसंख्यक गैर अनुदान प्राप्त कॉलेजों और शिक्षण संस्थानों में अपनी आरक्षण नीति को लागू करने के लिए बाध्य नहीं कर सकतीं।

2005 : सुप्रीम कोर्ट के आदेश के ठीक बाद संसद ने संविधान का 93वां संशोधन कर निजी शिक्षण संस्थानों में पिछड़ी, अनुसूचित जातियों व आदिवासियों के लिए आरक्षण लागू किया।

2010 : संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण संबंधी बिल को राज्यसभा में पारित किया गया।

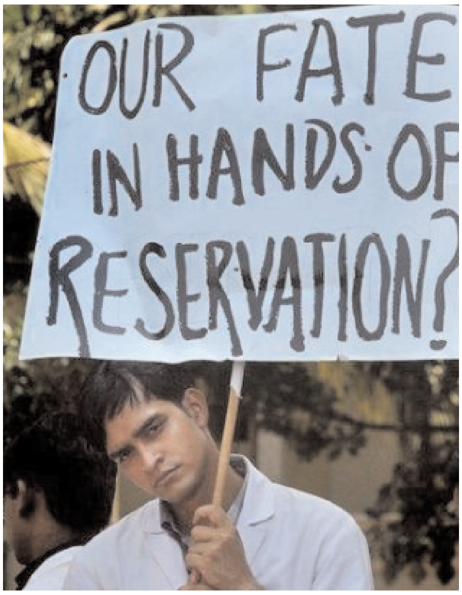

गौर कीजिए

देश की ट्रेड यूनियनों में केवल छह फीसद महिलाएं सक्रिय हैं।

बड़ा सवाल

आरक्षण के लिए कैसे हो सीटों का चयन

विवाद का महिला आरक्षण बिल से चोली-दामन का साथ है। जितना विवाद बिल को स्वीकार करने में राजनीतिक दलों में है उतनी ही परेशानी बिल को देश भर में लागू करने में है। महिला आरक्षण बिल संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं को 15 वर्षों के लिए एक-तिहाई आरक्षण देने की व्यवस्था करता है। यह आरक्षण-सामान्य और पहले से आरक्षित अनुसूचित जाति व जनजाति की सीटों-दोनों में लागू होगा। यानी संसद की 543 में से 181 सीटें और 28 राज्य विधानसभाओं की 4109 सीटों में से कुल 1370 सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हो जाएंगी। बिल के मुताबिक पहले 15 सालों तक हर पांचवें साल रोटेशन के आधार पर सीटों को महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाएगा। ऐसी स्थिति में हर बार चुनाव के दौरान दो-तिहाई उम्मीदवार अगले चुनाव के लिए अपनी दावेदारी खो देंगे क्योंकि अगले चुनाव में वह सीट आरक्षित हो जाएगी। अब राजनीतिक दलों के लिए यह तय कर पाना मुश्किल है कि हर बार के चुनाव में सीटों को आरक्षित करने का आधार क्या हो। राजनीतिक विश्लेषकों के मुताबिक या तो संसद इसके लिए कोई फार्मूला निकालेगी या इसे चुनाव आयोग जैसी किसी एजेंसी को सौंपा जा सकता है। बहरहाल, फोर्ब्स इंडिया ने इसके लिए कुछ सुझाव रखे हैं। लक्ष्य है, पंद्रह साल की अवधि में होने वाले तीन आम चुनावों के दौरान 33 फीसद सीटों के आधार पर देश की सभी सीटों को आरक्षण की छतरी के नीचे ले आना। इस बिल के पास हो जाने के बाद कई नए चेहरों को राजनीति में आने का मौका मिलेगा।

विकल्प एक : लॉटरी

कई लोगों का मानना है कि लॉटरी सिस्टम 33 फीसद आरक्षण लागू करने का सबसे निष्पक्ष तरीका है। इसके लिए पहले चुनाव में 33 फीसद सीटों का चयन लॉटरी के आधार पर किया जाय। इसके बाद वाले चुनाव में पहले की सीटों को अलग रखकर बाकी सीटों में से 33 फीसद का चयन लॉटरी से किया जाय। तीसरी बार के चुनाव में बचीं सीटें स्वतः आरक्षण के लिए तैयार हो जाएंगी। इस तरह लॉटरी सिस्टम के जरिये पंद्रह सालों तक महिलाओं के लिए संसद में 33 फीसद आरक्षण लागू कराना संभव हो सकता है।

हालांकि कई लोगों का मानना है कि यह सिस्टम दिल्ली जैसे छोटे राज्यों में तो सफल हो सकता है लेकिन बड़े राज्यों में इसके कामयाब होने में संदेह है। इसके लिए विद्वानों की राय है कि बड़े राज्यों को जोन में बांटना उचित हो सकता है। यानी राज्य को छोटे-छोटे जोन में बांटकर उनमें लॉटरी सिस्टम लागू कर इस विधि को अपनाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश की 80 सीटों को 10 जोनों में बांटकर प्रत्येक में लॉटरी सिस्टम अपनाई जाय। यहां पर कई लोग यह भी मानते हैं कि यदि शुरुआत में आरक्षण लागू कराने के लिए सीटों को चुनने में असमंजस हो तो हम उन सीटों को चुन सकते हैं जहां महिला वोटरों की संख्या सबसे अधिक हो। इसी तरह ठीक विपरीत उन क्षेत्रों को भी आरक्षण के लिए चुना जा सकता है जहां महिला वोटरों की संख्या बेहद कम हो। एक बार सीटों को चुन लेने के बाद अगले चुनाव में सीटों का चयन करना आसान हो जाएगा।

विकल्प दो : निर्वाचन आयोग करे चुनाव

संसद में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने का सबसे ज्यादा विरोध स्थानीय स्तर पर हो रहा है इसलिए यह तय है कि राजनीतिक दल कोई न कोई बखेड़ा खड़ा करके ही रहेंगे। ऐसे में चुनाव आयोग लोकसभा क्षेत्रों के लिए पहले से तय नंबरों को आधार बना सकता है। देश के हर राज्य के हर लोकसभा और विधानसभा सीट के लिए आयोग ने एक संख्या तय कर रखी है। इन नंबरों को आधार बनाते हुए भी तीन बार के चुनावों में महिला आरक्षण के लिए सीटों का चयन किया जा सकता है। हालांकि विद्वानों की मानें तो इस पद्धति में किसी प्रकार की राजनीतिक विवेकशीलता का परिचय नहीं मिलता।

गौर कीजिए

उच्चतम न्यायालय में महिला जजों की संख्या केवल तीन फीसद है।

अफसोस

2009 में 59, 2014 में सिर्फ 61 !

महिला सशक्तिकरण के तमाम दावों के बाद भी पांच साल के बाद 2014 में देश की संसद में पहुंचने वाली महिलाओं की संख्या में महज दो का इजाफा हुआ। वर्ष 2009 में जहां 59 महिलाएं संसद में थीं वहीं पांच साल बाद उनकी संख्या बढ़कर 61 हो सकी। जानते हैं क्या रहा सोलहवें लोकसभा चुनाव में महिलाओं का हाल।

- वर्ष 2014 के आम चुनाव में झारखंड और हरियाणा दो ऐसे राज्य रहे जहां से एक भी महिला चुनाव जीतकर लोकसभा नहीं पहुंच सकी।
- इस साल लोकसभा पहुंचने वाली महिलाओं की संख्या कुल 543 सीटों का 11.23 फीसद रहा जो अब तक का सबसे ज्यादा प्रतिशत है।
- 1977 में महज 19 महिलाएं ही चुनाव जीतकर लोकसभा पहुंच सकी थीं और वो संसदीय इतिहास की सबसे कम संख्या रही।
- पश्चिम बंगाल में इस बार सर्वाधिक महिलाओं ने चुनाव जीतकर लोकसभा में कदम रखा। राज्य से 14 महिलाएं संसद पहुंचीं जो 2009 में सात थी।
- राज्य की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के नेतृत्व वाली तृणमूल कांग्रेस ने वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में अन्य पार्टियों की तुलना में सबसे ज्यादा महिलाओं को टिकट दिया।
- तमिलनाडु, जहां से पांच साल पहले के संसदीय चुनाव में केवल एक महिला जीतकर संसद पहुंची थीं, वहां से इस बार चार महिलाएं लोकसभा पहुंचीं।
- झारखंड से इस बार के चुनाव में 17 महिला उम्मीदवार मैदान में थीं लेकिन उनमें से 16 की जमानत जब्त हो गई क्योंकि उन्हें जरूरी मतों का छठा हिस्सा भी नहीं मिला। खूंटी से चुनाव हारने वालीं आम आदमी पार्टी की उम्मीदवार दयामनी बरला ने कहा कि हार-जीत से फर्क नहीं पड़ता है, फर्क इससे पड़ता है कि महिलाओं ने चुनाव में हिस्सा लिया।
- इस साल कुल 8,136 उम्मीदवारों में से 636 महिलाएं चुनावी मैदान में थीं।
- जम्मू-कश्मीर, केरल और उड़ीसा से पहली बार कोई महिला लोकसभा पहुंची। जम्मू-कश्मीर और केरल से एक-एक और उड़ीसा से तीन महिलाएं चुनाव जीतीं।
- एक स्वतंत्र जांच एजेंसी पीआरएस के मुताबिक महिलाओं की जीत का प्रतिशत जहां दस रहा वहीं पुरुषों का मात्र छह रहा।
- शिक्षा के मामले में भी महिला सांसद पुरुषों से आगे हैं। वर्तमान संसद में 32 फीसद महिला सांसद या तो पोस्ट ग्रेजुएट हैं या उनके पास डॉक्टरेट की डिग्री है। वहीं केवल 30 फीसद पुरुष सांसदों के पास समकक्ष डिग्री है।
- पीआरएस का सर्वे बताता है कि महिला सांसद पुरुषों के मुकाबले युवा हैं।
- महिला सांसदों की औसत आयु जहां 47 है वहीं पुरुष सांसदों की औसत आयु 54 है।
- कोई भी महिला सांसद 70 साल से अधिक की नहीं हैं जबकि सात फीसद पुरुष सांसद 70 वर्ष से ऊपर के हैं।

गौर कीजिए

अपने स्वास्थ्य से जुड़े निर्णय लेने के लिए 50 प्रतिशत से भी कम महिलाएं आजाद हैं।

अभिव्यक्ति

पंचायत की जीत को दोहराने की जरूरत

प्रो. विभूति पटेल

(पीएचडी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई तथा डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इनक्लूजन पॉलिसी)

संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के जरिये महिलाओं को स्थानीय निकायों में 33 फीसद आरक्षण का रास्ता साफ हुआ था और इसके बाद एक करोड़ से ज्यादा महिलाओं ने चुनावों में हिस्सा लिया। जरूरत है स्थानीय निकायों में मिले आरक्षण नीति को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में दोहराने की।

"निर्णय लेने में महिला और पुरुषों की समान भागीदारी का लक्ष्य पा लेने से प्राप्त संतुलन समाज के गठन में ज्यादा बेहतर ढंग से परिलक्षित होगा। इसके अलावा यह लोकतंत्र की मजबूती और इसके सटीक ढंग से संचालित होने के लिए जरूरी है। निर्णय लेने के हर स्तर पर महिलाओं की भागीदारी और उनके दृष्टिकोण के समावेशीकरण के बिना समानता, विकास और शांति के लक्ष्यों को पाना असंभव होगा।"

महिलाओं पर चौथा विश्व कांफ्रेंस, बीजिंग, 1995 : आर्टिकल 181

महिला आरक्षण बिल : वर्तमान स्थिति

संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण विधेयक, 2008 (108वां संविधान संशोधन बिल) को 9 मार्च, 2010 को राज्यसभा में पारित कर देने के बाद लोकसभा में भेज दिया गया था लेकिन चार साल बीत जाने के बाद भी इसे अंतिम रूप से पास नहीं किया जा सका है जबकि देश के सभी बड़े राजनीतिक दलों ने अपने-अपने घोषणापत्रों में इसकी वकालत की है। संविधान की धारा 107 के अनुसार, लोकसभा सत्र समाप्त हो जाने भर से वे बिल जो राज्यसभा में लंबित हों, समाप्त नहीं हो जाते हैं। लेकिन राज्यसभा की विधायी दिशा-निर्देशों में यह भी कहा गया है कि "अगर लोकसभा भंग हो जाय तो उस दशा में केवल राज्यसभा में लंबित विधेयकों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के विधेयक समाप्त माने जाते हैं।" ऐसे में चूंकि महिला आरक्षण बिल राज्यसभा में लंबित नहीं है इसलिए यह पंद्रहवीं लोकसभा के भंग होने के साथ ही समाप्त मानी जाएगी।

महिला आरक्षण बिल का सफर

लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 फीसद आरक्षण संबंधी विधेयक 1996 में पहली बार सामने लाए जाने के बाद से अब तक 14 बार विभिन्न लोकसभा और राज्यसभाओं में प्रस्तुत किया जा चुका है। महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण तय किया जा सके इसके लिए 1996, 1998 और 1999 में संविधान संशोधन बिल भी लाए गए। 1996 में बिल को संयुक्त संसदीय समिति को भी सौंपा गया जबकि अन्य वर्षों में लोकसभा भंग होने के कारण बिल समाप्त हो गया।

संसदीय लोकतंत्र में लैंगिक असमानता

देश की जनसंख्या में महिलाओं की आबादी करीब-करीब पचास फीसद है लेकिन देश की राजनीतिक संस्थाओं यथा संसद व राज्य की सभाओं में उनकी भागीदारी अभी भी बेहद कम है। महिलाओं की उपस्थिति का आकलन इसी बात से किया जा सकता है कि संसद में महिलाएं केवल 10.9 फीसद सीटों तक ही सीमित हैं जबकि मात्र एक फीसद महिलाएं मंत्री हैं और चार फीसद महिलाएं विकास प्रक्रियाओं में वार्ताकारों की भूमिका में हैं। ऐसे में महिला आरक्षण विधेयक 33 फीसद सीटों को आरक्षित करके राजनीति में महिलाओं की सहभागिता को सुनिश्चित बनाना चाहता है। हालांकि पिछले 17 सालों से लंबित इस अति महत्वपूर्ण विधेयक को लगभग सभी दलों ने बेहद अरुचि और अगंभीरता के साथ लिया है।

गौर कीजिए

अमेरिका की कांग्रेस और सीनेट में 17 प्रतिशत महिलाएं मौजूद हैं।

वैश्विक परिदृश्य

188 देशों की संसद में महिलाओं की भागीदारी को लेकर किये गये इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन के एक वार्षिक अध्ययन में भारत को 108वें स्थान पर रखा गया है क्योंकि यहां लोकसभा और राज्यसभा में क्रमशः 11 और 10.06 फीसद महिलाएं ही मौजूद हैं। वर्ष 2013 में संसद में महिलाओं की भागीदारी का वैश्विक औसत 21.3 फीसद था और उनमें भी तीन अग्रणी देशों में शामिल थे रवांडा, अंडोरा और क्यूबा। भारत की स्थिति तो सार्क देशों के बीच भी शर्मनाक रही जहां नेपाल 24वें स्थान पर रहा जबकि चीन 55वें और पाकिस्तान 66वें स्थान पर रहा। पिछले लोकसभा की अवधि के दौरान देश में कुछ महिला समूहों ने 'वक्त 33 फीसद गठजोड़' का अभियान चलाया था। महज 33 फीसद आरक्षण जिसे न्यूनतम आरक्षण स्तर कहा जा सकता है, महिलाओं को भारतीय लोकतंत्र में न केवल मतदाता के रूप में बल्कि निर्णायक के रूप में भी बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत कर सकता है।

राजनीति में महिलाओं का उचित प्रतिनिधित्व केवल कोटा नीति के सही अनुपालन से ही संभव हो सकता है और ऐसा करने से संसद की कार्यप्रणाली को ज्यादा पारदर्शी, शक्तिशाली, लैंगिक मुद्दों पर संवेदनशील और शालीन बनाया जा सकता है। यूरोपीय देशों बेल्जियम, फ्रांस और जर्मनी तथा मिस्र, इराक और नेपाल अपनी-अपनी विधानसभाओं में महिलाओं को आरक्षण प्रदान करते हैं। अफगानिस्तान, बांग्लादेश, चीन और पाकिस्तान अपनी संसद में महिलाओं को कोटा देते हैं जबकि आस्ट्रेलिया, कनाडा, इजरायल, नीदरलैंड और ब्रिटेन में राजनीतिक दलों को ऐच्छिक कोटा की सुविधा दी गई है। वे न केवल स्त्रियों को आरक्षण देते हैं बल्कि चुनाव में उनकी जीत भी सुनिश्चित करते हैं।

स्थानीय निकायों में चयनित महिला प्रतिनिधियों का अनुभव (1994-2014)

देखा गया है कि पिछले दो दशकों में चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों ने महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल और शौचालय पर बजट अनुदान बढ़ाने में ज्यादा दिलचस्पी ली है। लेकिन बावजूद इसके न तो केंद्र स्तर पर और न ही राज्य स्तर पर किसी भी जनप्रतिनिधि ने स्थानीय स्तर पर कामों को साझा करने में कोई रुचि दिखाई है। इसी तरह अधिकारियों ने भी इसमें हिस्सा लेना जरूरी नहीं समझा है। किसी पंचायती राज प्रतिनिधि के लिए अपनी शक्तियों का त्याग कर देना उनके लिए मुश्किल है। ऐसे में स्वैच्छिक संगठन तीन स्तरों पर ट्रेनिंग कार्यक्रमों को चलाकर इसमें मदद कर सकते हैं। केंद्र स्तर और राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों के साथ अधिकारियों को ट्रेनिंग देकर साझा कार्यक्रम चलाने के नये विचारों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कराया जा सकता है।

इतिहास रहा है कि महिलाओं की आवाज को दबाया जाता है, उन्हें घरेलू कामों तक सिमटे रहना पड़ता है और उनकी राय को महत्वहीन करार दिया जाता है। ज्यादातर महिलाओं जिन्होंने घर की चारदीवारी को लांघ कर सार्वजनिक जीवन या राजनीतिक जीवन जीने का फैसला किया है, को कड़ा विरोध सहना पड़ा है। ये विरोध परिवार, समुदाय और पुरुष राजनेताओं द्वारा भी किया जाता रहा है। वर्तमान स्थिति भी वैसी ही है। चाहे राजनीतिक नेतृत्व कोई भी राग अलापे, उसकी चाहत भी महिलाओं को राजनीति से बाहर रखने की ही है।

राजनीति में भ्रष्टाचार, अपराधीकरण और समझौतावादी नीति को जिस तरह प्रश्रय दिया जा रहा है उससे महिलाएं इस क्षेत्र में जाने से कतराती हैं। महिलाओं को इस ऐतिहासिक उपेक्षा की नीति से बचाने और उन्हें विरोधी सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिवेश से बाहर निकालने के लिए संसद में महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षित होना अत्यंत आवश्यक है जो न केवल समतावादी बल्कि संवेदनशील भागीदारी को प्रोत्साहित करेगा।

गौर कीजिए

भारत में महिला आरक्षण बिल को अब तक चौदह बार संसद में पेश किया जा चुका है।

अभिव्यक्ति

भारत में महिला आंदोलनों का 'वुमेनीफेस्टो'

महिला आंदोलनों की मांग सरकारी निकायों में सक्रिय भागीदारी की रही है। चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधि 'वुमेनीफेस्टो' के जिन टास्कों को पूरा कर सकती हैं उनमें निम्न शामिल हैं :

-मानव संसाधन मंत्रालय : स्कूलों के लिए सर्वसुलभ और ग्रहणीय पाठों का निर्धारण, शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण तथा डॉक्टरों एवं अधिवक्ताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चालू कराना। लैंगिक असमानता को लेकर स्कूलों में बच्चों और शिक्षकों के लिए कार्यशाला आयोजित करना।

-कानून एवं विधि मंत्रालय : हर एक करोड़ की जनता पर जजों की संख्या 40 से अधिक करना।

-गृह मंत्रालय : महिलाओं के लिए नीतियों को सुविधाजनक बनाना, स्त्रियों की भागीदारी के लिए सर्विस रूल को बदलना, पुलिसकर्मियों की प्रवृत्ति को सुधारना और उनकी कार्यक्षमता वृद्धि के लिए ट्रेनिंग कार्यक्रम चलाना।

-महिला एवं बाल विकास मंत्रालय : बच्चों को यौन अपराध से बचाना और गांवों एवं शहरी स्लम इलाकों में बच्चों की देखभाल करना।

-महिला एवं बाल विकास, स्वास्थ्य एवं गृह मंत्रालय : यौन हिंसा की शिकार महिलाओं और बच्चों को पर्याप्त सुरक्षा और न्याय मुहैया कराना। महिला केंद्रित घरों के लिए विशेष योजना बनाना।

-श्रम एवं रोजगार मंत्रालय : संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में महिला कामगारों एवं उनके बच्चों के लिए न्यूनतम वेतन, सामाजिक सुरक्षा, मातृत्व लाभ और डे केयर सेंटर का निर्माण करना।

-वित्त मंत्रालय : महिलाओं के लिए बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं को ज्यादा सुलभ बनाना।

-सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय : मीडिया की मदद से नारी द्वेषी संस्कृति का खिलाफ अभियान छेड़ना।

- कानून मंत्रालय : महिला आरक्षण बिल पारित कराना।

यदि कोई महिला जनप्रतिनिधि सत्ता के हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहती है तो उसे वास्तविक अनुभव के आधार पर खुद को मजबूत बनाना होगा। सत्ता में चयनित महिलाओं को कम से कम एक तिहाई स्थान मिलना ही चाहिए जिससे वे निर्णायक बन सकें।

महिला उम्मीदवारों की चुनौतियां

लोकप्रिय जनादेश के बिना अगर कोई महिला उच्च पद के लिए चुनी जाती है तो प्रशासन और कानून व्यवस्था द्वारा उनका असहयोग किया जाता है। ऐसे में सार्वजनिक जीवन में काम करने के लिए महिला को जन सहयोग और अपार लोकप्रियता की जरूरत है ताकि वे जनहित के कामों को ज्यादा सुचारू ढंग से पूरा कर सके। यदि कोई महिला जनप्रतिनिधि सत्ता के हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहती है तो उसे वास्तविक अनुभव के आधार पर खुद को मजबूत बनाना होगा। सत्ता में चयनित महिलाओं को कम से कम एक तिहाई स्थान मिलना ही चाहिए जिससे वे निर्णायक बन सकें। इसलिए विधायिका में महिलाओं को 33 फीसद आरक्षण मिलना अत्यंत आवश्यक है। एक बार चुन लिये जाने पर प्रशिक्षितों के लिए प्रशिक्षण कर्यशालाओं के जरिये वे खुद को समर्थ बना सकती हैं। निर्णय लेने के विभिन्न स्तरों पर रोज की गतिविधियों के साथ-साथ दीर्घकालीन रणनीतियों पर काम करने से मिलने वाले अनुभव का इस्तेमाल वे ज्यादा संगठित और सुघड़ व्यवस्था देने में कर सकती हैं।

मुश्किल परिस्थितियों का सामना करने और फील्डवर्क का कोई शॉर्टकट नहीं होता। सार्वजनिक रूप में काम करने वाली महिलाओं को अपने लिए सहयोगी वातावरण का निर्माण खुद करना होगा। उन्हें अपने लिए सुरक्षित रात्रि विश्राम का प्रबंध करना होगा, आने-जाने के लिए सुरक्षित वाहन और साफ शौचालय की व्यवस्था भी उन्हें खुद ही करनी होगी। अपनी दक्षता को हमेशा बढ़ाते रहना और ज्ञान को परिमार्जित करने रहना निर्णय लेने के स्तर पर मौजूद हर महिला के लिए सबसे जरूरी चीज है। इसी तरह बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में एक से ज्यादा पोर्टफोलियो को संभालने की काबिलियत होना जल्दी कामयाबी की चाबी है। इसके अलावा महिलाओं को आधुनिक उपकरणों कंप्यूटर, इंटरनेट और नये तकनीकी मोबाइलों के प्रति अस्पृश्यता को छोड़ना

गौर कीजिए

संसद में महिलाओं की वैश्विक भागीदारी का औसत 21.3 प्रतिशत है।

चाहिये क्योंकि ये मानवीय परिश्रम को कम कर कार्य को तेज गति से करने में मदद करते हैं। हमारे देश में ज्यादातर महिलाएं पुरुषों की रक्षा घेरे में ही जीवन बिताती हैं और केवल 11 फीसद महिलाएं जैसे विधवा, अकेली, तलाकशुदा या अविवाहित महिलाएं ही अपने घर की प्रमुख की भूमिका में होती हैं। ऐसे में पुरुषों के सहयोग के बिना महिलाओं की आजादी की बात करना बेमानी होगी। मानव की आजादी में पुरुष और स्त्री की साझेदारी के एक पूरे युग को सामने रखने जा रही है 21वीं सदी। यह सदी धर्म के नाम पर आतंकवाद से ग्रस्त विश्व समुदाय के बीच सामाजिक न्याय, सुरक्षित पर्यावरण, सामुदायिक सद्भाव और विश्व शांति के लिए एक मिसाल बनेगी।

निष्कर्ष

दो दशक से भी ज्यादा समय में महिला आरक्षण बिल को पारित न करा पाने के कारण देश की लोकतांत्रिक प्रणाली में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के साथ अन्याय हुआ है। अपने घोषणापत्रों में महिलाओं को संसद में आरक्षण देने के वादे के बावजूद ज्यादातर राजनीतिक दल खुद महिला उम्मीदवारों को टिकट देने से कतराते हैं। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के जरिये महिलाओं को स्थानीय निकायों में 33 फीसद आरक्षण का रास्ता साफ हुआ था और इसके बाद एक करोड़ से ज्यादा महिलाओं ने चुनावों में हिस्सा लेकर स्थानीय प्रशासन में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। इस समय आठ राज्यों बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, केरल, मध्य प्रदेश और उड़ीसा ने अपने यहां की स्थानीय निकायों में महिलाओं को पचास फीसद तक आरक्षण दे रखा है। अगर देश की बाकी राज्यों की पंचायतों में भी 50 फीसद आरक्षण प्रदान कर दिया जाय तो 1.5 मिलियन महिलाएं प्रशासन में सीधे भूमिका निभा सकती हैं। जब भी परिस्थितियों को अनुकूल बनाया जाता है तो ज्यादा से ज्यादा महिलाएं चुनाव लड़ने के लिए सामने आती हैं। राजनीतिक और सार्वजनिक प्रक्रियाओं में भाग लेने वाली महिलाओं की संख्या में हुए इजाफे का दीर्घकालीन असर समाज और परिवार में लैंगिक भेदभाव पर पड़ता है। इससे महिलाओं और अन्य पिछड़े वर्गों को अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने का हौसला मिलता है। जरूरत है स्थानीय निकायों में मिले आरक्षण नीति को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में दोहराने की। साथ ही स्थानीय पंचायतों में सफल रहीं महिला प्रतिनिधियों को उस प्रशिक्षण की जरूरत है जो उन्हें देश और राज्य की राजनीति में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे। महिलाओं को राजनीति में टिके रहने के लिए उन्हें सहयोग की आवश्यकता है और यह मौजूदा नेटवर्क को मजबूत बना कर किया जा सकता है। साथ ही जरूरत इस बात की भी है कि देश के अच्छे अनुभवों को अन्य दक्षिण एशियाई देशों के साथ बांटा जाय ताकि न केवल अपने देश में लोकतंत्र को मजबूती दी जा सके बल्कि महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मामले में अन्य देशों से रैंकिंग को भी सुधारा जा सके।

गौर कीजिए

भारत में केवल 11 प्रतिशत महिलाएं ही अपने घर की मुखिया हैं।

अभिव्यक्ति

ये किसकी सियासत है ?

अमु जोसेफ

(स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार, स्त्रीवादी विषयों की लेखिका, लैंगिक मुद्दों पर संवेदनशील कार्य के लिए यूएनएफपीए की लाडली मीडिया अवार्ड से सम्मानित)

पिछले 17 साल से लंबित महिला आरक्षण बिल अब तक सबसे ज्यादा दिन तक लंबित रहने वाला बिल बन चुका है। 1996 में पहली बार पेश किये जाने के बाद 2010 में इसे राज्यसभा में पारित किया जा सका जबकि लोकसभा में पास होने के लिए यह अब भी इंतजार कर रहा है।

दिलचस्प यह है कि भारतीय मतदाता इस बिल को लेकर अपने नेतृत्वकर्ताओं से ज्यादा खुले विचारों वाले हैं। पिछले दिनों सीएनएन आईबीएन-द हिन्दू इलेक्शन ट्रेकर सर्वे में यह बात सामने आई कि 18 राज्यों के पचास फीसद मतदाता चाहते हैं कि संसद में कम से कम एक तिहाई सांसद महिलाएं हों। आम धारणा के विपरीत यह भी देखा गया कि महिलाओं को संसद में देखने की इच्छा रखने वाले न किसी एक भौगोलिक प्रदेश के हैं और न ही किसी खास लिंग या वर्ग के। बल्कि हर वर्ग और प्रदेश उन्हें अपना जनप्रतिनिधि बनते देखना चाहता है।

शहरी क्षेत्रों के 60 फीसद जबकि ग्रामीण इलाकों के 51 फीसद पुरुष महिलाओं के संसद में आरक्षण के पक्ष में हैं। इसी तरह उत्तर भारत के 52 फीसद हिन्दी भाषी लोग बिल को पारित होते देखना चाहते हैं। (दीगर है कि इन क्षेत्रों के प्रमुख राजनीतिक दल और राजनेता महिला आरक्षण बिल का जमकर विरोध करते हैं और इसे वे अपने क्षेत्र की जनता की आवाज बताते हैं।) कहा जा सकता है कि ज्यादातर राजनीतिक विश्लेषकों की इस चिंता से आम जनता को कोई फर्क नहीं पड़ता कि आरक्षण लागू होने से राजनीतिक परिवारों की बीवियों और बेटियों को ही फायदा होगा। निस्संदेह वे इसमें कोई बुराई नहीं देखते क्योंकि ज्यादातर पुरुष सांसद भी अपने रसूखदार राजनीतिक परिवारों के रास्ते ही संसद में प्रवेश पाते हैं।

देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर 2011 में प्रकाशित अपने लेख में कंचन चंद्रा और वामिक उमयरा ने लिखा है कि एक लोकतांत्रिक देश होते हुए भी भारतीय राजनीति वंशवादी है। कम से कम 29 फीसद सांसदों को उनके परिवार के सदस्यों, पिता, मां, भाइयों, पति, पत्नी, दादा, चाचा-चाची या सगे संबंधियों ने राजनीति में प्रवेश दिलाया है। करीब पांच फीसद सांसदों के परिवारीजन या तो साथ-साथ राजनीति में आते हैं या बाद में। खानदानी राजनीति वाले 34 फीसद लोगों का संसद में होना किसी भी लोकतंत्र में वंशवाद का सबसे बड़ा आंकड़ा है। लेख में कहा गया है कि यह आंकड़ा बताता है कि किस तरह वंशवादी राजनीति अब भारत की राजनीति का चरित्र बनता जा रहा है। हालांकि लेख में लैंगिकता को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया।

गौर कीजिए

अगर देश के सभी राज्य महिलाओं को पंचायत में पचास प्रतिशत आरक्षण दें तो डेढ़ मिलियन औरतें सीधे शासन से जुड़ जाएंगी।

अभिव्यक्ति

स्त्री और वंशवादी राजनीति

भारतीय राजनीति में वंशवाद को लेकर वैसे तो कई तथ्य और प्रमाण दिये गये हैं लेकिन कई अन्य टिप्पणीकारों ने यह बताना चाहा है कि महिलाएं भी राजनीति में कदम बढ़ाने के लिए अपने परिवार का इस्तेमाल करना ज्यादा ठीक समझती हैं। (इसे यूं भी कहा जा सकता है कि पुरुष राजनेता अपनी पत्नियों का इस्तेमाल अपने पद को बनाए रखने और अपनी साख को बढ़ाने में करते हैं।) लेखक पैट्रिक फ्रेंच ने वंशानुगत सांसदों के लिए 'एचएमपीएस' (हेरेडेट्री एमपी, संसद में जिनकी संख्या एक तिहाई से कुछ कम 28.6 फीसद है) शब्द का उल्लेख किया है और कभी न कभी राजनीति में रहे परिवारों वाले एमपी के लिए 'हाइपरहेरेडट्री' का इस्तेमाल किया है। अपनी पुस्तक 'द प्रिंसली स्टेट ऑफ इंडिया' में फ्रेंच ने सांसदों की उम्र को उनके वंशानुगत कार्यालयों को निर्धारित करने वाला प्रमुख कारक माना है। वे लिखते हैं "लोकसभा में तीस साल तक की उम्र वाले हर सांसद को वह सीट विरासत में मिली थी जबकि 40 साल के करीब के दो तिहाई से ज्यादा सांसद एचएमपीएस थे।" कोई आश्चर्य नहीं कि पंद्रहवीं लोकसभा की 59 महिला सांसदों में से दो तिहाई खानदानी राजनीति की देन थीं। फ्रेंच अपनी चिंता जताते हुए कहते हैं कि राजनीति में अपने पारिवारिक विरासत को संभालने की प्रवृत्ति जिस तरह से बढ़ती जा रही है उससे आने वाले समय में देश फिर से आजादी के संघर्ष के दिनों में पहुंच जाएगा जब भारत में राजवंशों का शासन हावी था।

महिला नेताओं का लंबा इतिहास

स्तंभकार दिनेश त्रिवेदी इस बात की ओर संकेत करते हैं कि पंद्रहवीं लोकसभा और राज्यसभा में मौजूद 70 फीसद महिलाएं किसी न किसी रूप से राजनीतिक वर्चस्व वाले परिवारों से जुड़ी हुई हैं। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि इसी तरह का लाभ पाये हुए पुरुष सांसदों पर किसी का ध्यान नहीं जाता। देखा जाय तो महिलाओं की वंशवादी राजनीति में वर्चस्व की कहानी कोई नहीं है। खासकर दक्षिण एशिया के ज्यादातर देशों में जहां समाज में पिछड़ी स्थिति में होने के बाद भी महिलाएं राजनीति में अपना खासा दबदबा रखती आई हैं। इस क्षेत्र में राजनीति में महिलाओं का प्रभुत्व 1960 के दशक में बढ़ना शुरू हुआ। 1960 में श्रीलंका की प्रधानमंत्री बनीं सिरिमावो भंडारनायके विश्व की पहली महिला प्रधानमंत्री थीं। इसी तरह 1966 में इंदिरा गांधी देश की पहली महिला प्रधानमंत्री बनीं। अन्य महिला राजनेता जो दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों की प्रमुख बनीं उनमें बांग्लादेश की शेख हसीना वाजिद और बेगम खालिदा जिया, पाकिस्तान की बेनजीर भुट्टो, श्रीलंका की चंद्रिका कुमारतुंगा और सरकार में न रहकर भी सरकार चलाने वाली भारत की सोनिया गांधी मुख्य रूप से प्रभावशाली रहीं। इसके अलावा हाल के वर्षों में भारत की कई महिलाएं राजनीतिक रूप से प्रभावशाली पदों पर रही हैं जैसे- प्रतिभा पाटिल, सोनिया गांधी, मीरा कुमार सुषमा स्वराज और सुमित्रा महाजन। देश के चार राज्यों की बागडोर इस समय महिला मुख्यमंत्रियों के हाथ में हैं जिनमें वसुंधरा राजे, जे जयललिता, ममता बनर्जी और आनंदी बेन पटेल शामिल हैं। इससे पहले मायावती, शीला दीक्षित और राबड़ी देवी भी अपने राज्य की कमान संभाल चुकी हैं। अब सवाल ये उठता है कि ये महिलाएं किस तरह राजनीति के शिखर पर पहुंचने में कामयाब हो सकी हैं। अब तक हुई चर्चाओं में अक्सर ये बात सामने आई है कि इनमें से ज्यादातर महिलाएं या तो शक्तिशाली राजनीतिक घरानों से आती हैं या फिर उनके पीछे कोई प्रभावशाली पुरुष रहा है। इन महिलाओं ने अपना पद लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित होकर पाया है इस ओर किसी का ज्यादा ध्यान नहीं जाता है।

एंड्रा फ्लेशेनबर्ग ने 2008 में आई कजुकी आईवानागा की किताब 'एशिया में राजनीति में महिलाओं की भागीदारी और प्रतिनिधित्व : बाधाएं और चुनौतियां' में कहा है कि पूरे एशिया में मौजूद कुछ कामयाब महिला राजनेता लगभग एक समान ऊंची हैसियत वाले परिवारों से नाता रखती हैं। उनमें से कई राष्ट्रीय स्तर पर ख्यात परिवारों से हैं तो कई बड़े रईस घरानों से। ज्यादातर ने उत्कृष्ट अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से शिक्षा ग्रहण की है। इन महिला राजनेताओं में कई ने बिना किसी अनुभव के राजनीति में कदम रखा और उन्हें औपचारिक कार्यालयों का कोई ज्ञान नहीं था। कहा जा सकता है कि रसूखदार घरानों के मामले में न तो राजनीतिक ज्ञान मायने रखता है और न ही लैंगिकता। इन महिलाओं की सामाजिक संपन्नता इन्हें नेतृत्व करने की वैधता प्रदान कर देती है।

गौर कीजिए

शहरी क्षेत्र के 60 जबकि गांवों के 51 प्रतिशत लोग महिलाओं को संसद में देखना चाहते हैं।

पितृसत्ता को चुनौती

हालांकि कुछ ऐसे भी विचारक हैं जो यह मानते हैं कि राजनीति में वर्चस्व हासिल करने वाली महिलाओं ने पितृसत्ता को पलटने में कामयाबी पाई है। अपनी किताब 'दक्षिण एशिया की राजनीति में महिलाएं' में विद्यामाली समारासिंघे ने कहा है कि सिरिमावो भंडारनायके और इंदिरा गांधी जैसी नेताओं ने भले ही राजनीति में आने के लिए अपने प्रभावशाली परिवारों को जरिया बनाया है लेकिन वे वास्तव में करिश्माई नेता और चतुर राजनेता थीं। उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया का हिस्सा बनने के लिए अपने परिवार का सबसे अच्छा इस्तेमाल किया। अक्सर ये कहा जाता है कि श्रीमति गांधी और भंडारनायके केवल अपनी पारिवारिक विरासत की देन हैं। यह सच है लेकिन ये भी सच है कि दोनों महिलाओं ने अपनी विरासत को मजबूती के साथ आगे बढ़ाया है। विद्यामाली ने लिखा है कि अगर ये दोनों महिलाएं केवल खानदानी राजनीति करतीं और पुरुष राजनेताओं के हाथों की कठपुतली बनी रहतीं तो शायद उनका तथाकथित राजनीतिक राजवंश कमजोर होकर अपना अस्तित्व खो चुका होता। लेकिन इसके उलट न केवल उन्होंने राजनीति में अपनी ताकत और कद बढ़ाया बल्कि अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए राजनीति में प्रवेश का रास्ता सुगम बनाने में कामयाब रहीं (चाहे ये सही हो या गलत और चाहे उनकी पीढ़ियां अपने पूर्वजों के नक्शेकदम पर चलना चाहें या नहीं)।

यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि इंदिरा गांधी और भंडारनायके दोनों महिलाओं ने विधवाओं की जुड़ी परंपरागत भ्रांतियों को तोड़ने की कोशिश की है। अपनी मां की तरह चंद्रिका कुमारतुंगा अपने आप राजनीति में नहीं आई थीं बल्कि उन्हें एक बेटी और विधवा के नाते राजनीति में आने से पहले कड़ी प्रतिद्वंद्विता झेलनी पड़ी थी। उन्होंने परिवार में पुरुष उत्तराधिकारी वाली परंपरा को तोड़ा था क्योंकि उनके भाई अनुरा भंडारनायके भी राष्ट्रीय स्तर के राजनेता थे। कुमारतुंगे कुशल रणनीतिकार थीं और उन्होंने अपनी राजनीतिक विरासत का इस्तेमाल अपने लिए करने में कामयाबी पाई थी। रास्ता चाहे जो भी हो, एक बार राजनीति में आ जाने के बाद इन महिलाओं ने महिलाओं के पुरुष सत्ताधारियों के हाथों की कठपुतली बनने की धारणा को तेजी से तोड़ा है। ज्यादातर महिला राजनेताओं ने, चाहे वे पदासीन हों या नहीं, अपने आप को खुद बनाया है। सत्ता में शामिल महिलाओं ने अपने आगे का रास्ता बिना किसी गुरु या पुरुष रिश्तेदार की मदद के बनाया है। ये अलग बात है कि उनकी स्वायत्तता को हमेशा मान्यता नहीं मिली है और उनके कामों को पुरुष राजनेताओं की तुलना में अलग ढंग से मापा गया है।

लिनेट लिथगो के अनुसार, मीडिया में महिला राजनेताओं को प्रदर्शित करने के तरीके के कारण भी उनकी छवि पर असर पड़ता है। एशिया में महिला राजनेताओं की छवि बनाने में मीडिया की भूमिका पर लिनेट के अध्ययन में इस पर जोर डाला गया है। इसमें मुख्य रूप से चंद्रिका कुमारतुंगे और कोराजन एक्विनो का उल्लेख है। अध्ययन में कहा गया है कि मीडिया एशियाई महिला राजनेताओं को अक्सर लैंगिक और सांस्कृतिक दायरे में रखकर दिखाता है। सत्ता में मौजूद महिलाओं के नेतृत्व के गुणों की अपेक्षा उनके स्त्रीयोचित व्यवहार की अपेक्षा ज्यादा की जाने लगती है। लिथगो ने इस बात के प्रमाण दिये हैं कि किस तरह मीडिया की चाहत महिला राजनेताओं की काबिलियत को सामने लाने की नहीं होती है। ज्यादातर समय में मीडिया महिला राजनेताओं के कामों की समीक्षा अत्यंत कठिन कसौटी पर करता है जो आम तौर पर पुरुष राजनेताओं के मामले में नहीं होता।

लैंगिकता आधारित लोकतंत्र को नुकसान

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि दक्षिण एशिया में जहां एक ओर कुछ महिला राजनेता शक्तिशाली पदों पर आसीन हैं तो वहीं संसद में महिलाओं की कम उपस्थिति और राजनीति में महिलाओं की बेहद निम्न स्थिति, विरोधाभास पैदा करते हैं। बांग्लादेश, भारत और श्रीलंका जैसे देश जहां महिलाओं ने शक्तिशाली राजनीतिक पदों को संभाला है, अपने यहां राजनीति में लैंगिक भेदभाव को नहीं मिटा कर लोकतंत्र को बड़ा नुकसान पहुंचा रहे हैं। भारत में इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के पांच दशक बाद भी संसद और मंत्रिमंडलों में महिलाओं की मौजूदगी की दर बेहद खराब है। सारे तर्कों से इतर एक सवाल जो अक्सर उठता है वो यह है कि क्या महिला राजनेता कुछ अलग कर सकेंगी, खासकर महिलाओं के लिए? जरूर कर सकेंगी लेकिन महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का जिम्मा अकेले महिला राजनेताओं पर ही नहीं है बल्कि यह तमाम राजनेताओं, सिविल सोसायटी और नागरिकों की भी जिम्मेदारी बनती है।

(इस लेख का अंग्रेजी संस्करण इंडियाटुगेदर.कॉम में प्रकाशित हो चुका है)

गौर कीजिए

देश की संसद में करीब 34 प्रतिशत सांसद राजनीतिक घरानों से हैं।

अभिव्यक्ति

महिला नेतृत्व बनाम अप्रतिनिधित्व

रंजना कुमारी

(डायरेक्टर, सेंटर फॉर सोशल रिसर्च, अध्यक्ष, वीमेन पावर कनेक्ट और महिला आरक्षण से जुड़े आंदोलन में महती भूमिका)

ये नहीं है कि महिलाएं किसी राजनीतिक पार्टी से नहीं जुड़ी होती हैं बल्कि उन्हें पार्टी की महिला विंग से जोड़ दिया जाता है और केवल महिलाओं से जुड़े मुद्दों, बलात्कार, दहेज और घरेलू मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने को कहा जाता है। कभी-कभी उन्हें महंगाई जैसे राष्ट्रीय मुद्दों पर आगे बढ़ने की छूट दे दी जाती है।

भारत चरमपंथ का देश है और जब बात राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की आती है तो इसमें भी कोई अपवाद नहीं है। आधुनिक भारत में महिलाओं ने राजनीति में शीर्ष पदों को प्राप्त किया है। महिलाएं राष्ट्रपति रह चुकी हैं, लोकसभा की स्पीकर हैं, केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल हैं, राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की मुखिया और कई राज्यों की मुख्यमंत्री भी हैं। कोई भी ये आसानी से सोच सकता है कि भारतीय राजनीति महिलाओं द्वारा चलायी जाती होगी और इसका अच्छा असर महिलाओं के जीवन के हर पहलू पर होगा। ये भी माना जा सकता है कि जिस तरह महिलाएं ऊंचे पदों पर काबिज हैं, जरूर राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व भी ऊंचे स्तर का होगा। लेकिन अपनी संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के मामले में देश पूरी दुनिया के सामने बेहद शर्मनाक स्थिति में है।

सोलहवीं लोकसभा के चुनाव में 61 महिलाओं ने लोकसभा में जगह बनाई है जो कुल संख्या का करीब 11 फीसद है और आजादी के बाद से सर्वाधिक है। वहीं पंचायत स्तर पर भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों ने संवैधानिक प्रावधान के बहुत पहले ही गांवों की राजनीति में महिलाओं को शामिल किया था जबकि बिहार, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड जैसे राज्यों ने पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण का स्तर 33 फीसद से बढ़ाकर 50 फीसद तक कर दिया है। लेकिन जब बात राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की आती है तो कांग्रेस पार्टी, जो आरक्षण का राग अलापती रही है, ने 2014 के चुनाव में महज 60 महिलाओं को टिकट दिया। भारतीय जनता पार्टी ने केवल 38 जबकि नई नवेली आम आदमी पार्टी ने 59 महिलाओं को लोकसभा चुनाव में टिकट दिया। प्रतिशत के हिसाब से कांग्रेस 12.96 फीसद, भाजपा 8.8 फीसद जबकि आप ने 13.5 फीसद महिलाओं को मैदान में उतारा। ये नहीं है कि महिलाएं किसी राजनीतिक पार्टी से नहीं जुड़ी होती हैं बल्कि उन्हें पार्टी की महिला विंग से जोड़ दिया जाता है और केवल महिलाओं से जुड़े मुद्दों, बलात्कार, दहेज और घरेलू मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने को कहा जाता है। कभी-कभी उन्हें महंगाई जैसे राष्ट्रीय मुद्दों पर आगे बढ़ने की छूट दे दी जाती है। आम मुद्दों में महिलाओं की नगण्य भागीदारी का असर पूरे समाज में उनकी स्थिति पर पड़ता है।

पूर्व अतिरिक्त सॉलिसीटर जनरल इंदिरा जयसिंह कहती हैं कि एक महिला के राष्ट्रपति या एक महिला के मुख्यमंत्री बन जाने से यह साबित नहीं हो जाता कि महिलाओं के साथ समान व्यवहार किया जाता है बल्कि निर्वाचन द्वारा तय संस्थाओं में 33 फीसद महिलाओं के होने से बदलाव की दिशा तय होती है।

33 % क्यों

जब बात राजनीति की आती है तो सबक उद्योग जगत से भी लिया जा सकता है। शोध बताते हैं कि महिलाओं की एक तय संख्या होनी चाहिए जो बदलाव को सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभा सकें। वह संख्या दस में तीन अथवा तीस फीसद होनी चाहिए। शोध में यह भी कहा गया है कि महिलाओं की संख्या नेतृत्व के पदों पर रह चुकी महिला प्रतिनिधियों द्वारा प्रबलित और पोषित की जाती रही है। महिला नेताओं ने यह महसूस किया है कि 20-25 फीसद महिलाओं की उपस्थिति कोई खास प्रभाव नहीं छोड़ पाती। 30-35 फीसद महिलाएं सामान्यता का अहसास कराती हैं जबकि 35 फीसद से ज्यादा महिलाओं के होने से निर्णायक स्तर पर बदलाव लाया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र भी राजनीति और संसदों में महिलाओं को 33 फीसद स्थान दिलाने की ओर प्रयासरत रहा है। महिलाओं की न्यूनतम निर्धारित संख्या ही उनकी जिंदगी में वास्तविक परिवर्तन ला सकती है। दुर्भाग्य से दुनिया के 200 में से मात्र 28 देशों ने ही राजनीति में महिलाओं के महत्व को स्वीकारा है।

गौर कीजिए

पंद्रहवीं लोकसभा की 70 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी राजनीतिक घराने से थीं।

33 फीसद प्रतिनिधित्व पाना मुश्किल क्यों ?

एक दिलचस्प तथ्य ये भी देखा गया है कि देश में नेतृत्व के स्थान पर महिलाएं तभी आ पाई हैं जब या तो उन्होंने अपनी खुद की राजनीतिक पार्टी का निर्माण किया है जैसे- मायावती, जयललिता और ममता बनर्जी या वे अपने पति या परिवार की विरासत को आगे बढ़ाती हैं, जैसे- सोनिया गांधी, विजयाराजे सिंधिया, महबूबा मुफ्ती, शीला दीक्षित और राबड़ी देवी।

इस सवाल का जवाब बेहद कठिन है और इसमें राजनीति से लेकर मनोवैज्ञानिक बाधा तक शामिल हैं। 'युवा 2010-नेतृत्व में महिलाएं-आप कितनी स्मार्ट हैं?' नाम के एक अध्ययन में पाया गया कि जो समूह प्रभाव में होते हैं वे अपने जैसे ही अन्य समूहों को प्रोत्साहित करते हैं। अगर पुरुषों का समूह प्रभाव में है तो निशिचत रूप से वह पुरुष प्रधान समूहों को आगे बढ़ाने में दिलचस्पी लेगा। अध्ययन में यह भी पाया गया कि अल्पसंख्यक, जिनकी संख्या मात्र 30 फीसद है, बहुसंख्यकों की प्रवृत्ति और उनके हाव-भाव को अपना लेते हैं। असल में वे बहुसंख्यकों की नकल करते हैं। इसी तरह महिलाएं भी पुरुषों की मनोवृत्ति को अपनाने लगती हैं। कार्यस्थल पर वे पुरुषों की सोच को ग्रहण करने लगती हैं और अन्य महिलाओं के प्रति भी पुरुषवादी रवैया अपनाती हैं। जो महिला उम्मीदवार खुद को ज्यादा आत्मविश्वासी और प्रतिद्वंद्वी के तौर पर पेश करती हैं उन्हें अपेक्षाकृत कम आत्मविश्वासी और नरम महिला उम्मीदवार की तुलना में कम अच्छा माना जाता है।

भारतीय व्यवस्था में एक बड़ी समस्या राजघरानों की है जो आम महिलाओं को राष्ट्रीय राजनीति में आने से रोकते हैं। महिला राजनेताओं को पार्टी में अच्छी स्थिति में आने के लिए पदानुक्रम का इंतजार करना पड़ता है। एक दिलचस्प तथ्य ये भी देखा गया है कि देश में नेतृत्व के स्थान पर महिलाएं तभी आ पाई हैं जब या तो उन्होंने अपनी खुद की राजनीतिक पार्टी का निर्माण किया है जैसे- मायावती, जयललिता और ममता बनर्जी या वे अपने पति या परिवार की विरासत को आगे बढ़ाती हैं, जैसे- सोनिया गांधी, विजयराजे सिंधिया, महबूबा मुफ्ती, शीला दीक्षित और राबड़ी देवी।

एक अन्य अध्ययन में बताया गया कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को खुद को ज्यादा प्रोत्साहित करने और अपने कामों को ज्यादा मुखर तरीके से बताने की जरूरत है। इसमें कहा गया है कि पारंपरिक पुरुषवादी सोच वाले लोग ज्यादा प्रभावशाली नेता साबित होते हैं। ये एक ऐसा दुष्चक्र है जिसे तोड़ पाना बेहद मुश्किल है और यही वजह है कि राजनीति में बहुत कम महिलाएं बच पाती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि महिलाएं अपने अनुभवों को अन्य महिलाओं में बांटें, उन्हें ज्ञान दें और ऊंचाई तक पहुंचने का रास्ता प्रशस्त करें। किसी की पत्नी, बहन और बेटी के तमगे के बिना महिलाओं को राजनीति में अपने तरीके से ही सफल बनना होगा। ये तभी संभव है जब महिलाओं का राजनीति में आना निरंतर बना रहे। इसके लिए महिला आरक्षण बिल और आई-डब्ल्यूआईएल (www.womenleader-ship.in) जैसे कार्यक्रमों को लागू करना अनिवार्य है।

गौर कीजिए

वर्तमान में केवल 15.55 प्रतिशत महिलाएं केंद्रीय कैबिनेट में हैं।

बिहार की बेटियां

राजनीति में बनाई पहचान

एक वक्त था जब बिहार का नाम ज्ञान और राजनीति के पुरोधा राज्यों में शामिल होता था। विविध कारणों से ज्ञान के क्षेत्र में राज्य की उपलब्धियां सीमित होती चली गईं लेकिन राजनीति का उत्तरोत्तर विकास होता गया और क्रमशः महिलाओं का इसमें योगदान भी बढ़ता गया। आज भी देश की तमाम विधानसभाओं में से सबसे ज्यादा महिलाएं बिहार विधानसभा में हैं।

भागवती देवी

गया से जनता दल यू की सांसद रह चुकीं भागवती देवी का जन्म औरंगाबाद के मिठइया गांव में 1936 को हुआ था। बेहद विपरीत परिस्थितियों से उठकर भागवती देवी ने राजनीति की बुलंदियों को छुआ। वे मुसहर जाति से हैं राजनीति में आने से पूर्व अपने व परिवार के भरण पोषण के लिए उन्हें पत्थर तोड़ने तक का काम करना पड़ा था। उनके बेटे खेतिहर मजदूर हैं और सही मायनों में वे संसद में अपने क्षेत्र की आवाज बुलंद करती रही हैं। 1969 में भागवती देवी बिहार विधानसभा की सदस्य चुनी गईं। उसके बाद से उन्होंने राज्य में कई मुख्य पदों को संभाला। 1996 में 11वीं लोकसभा में उन्होंने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया। भागवती देवी ने देश की आजादी की लड़ाई में भी भाग लिया था और उस दौरान उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा था।

तारकेश्वरी सिन्हा

राज्य और देश के अग्रणी राजनीतिज्ञों में तारकेश्वरी देवी का नाम आता है। 1926 में पटना में जन्मीं स्व. सिन्हा पहली लोकसभा में पटना से चुनी गई थीं और अगले लगातार तीन कार्यकालों में बाढ़ से सांसद बनी रहीं। वे जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल में देश की पहली महिला उप विदेश मंत्री बनीं। उन्हें मोरारजी देसाई के करीबी माना जाता था और उनके साथ मिलकर उन्होंने कांग्रेस से पृथक पार्टी बनाई थी।

किशोरी सिन्हा

1980 में बिहार के वैशाली से सांसद चुनी गईं किशोरी सिन्हा उस क्षेत्र का संसद में प्रतिनिधित्व करने वाली पहली महिला थीं। वे लगातार दो बार संसद की सदस्य रहीं। 1925 में जन्मीं श्रीमति सिन्हा राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री सत्येन्द्र नारायण सिन्हा (छोटे साहब) की पत्नी थीं जबकि खुद राजनीतिक घराने से ताल्लुक रखती थीं। उनके पिता रामेश्वर प्रसाद सिन्हा प्रतिबद्ध स्वतंत्रता सेनानी थे और भारत की संविधान सभा के सदस्य थे। उनके पुत्र निखिल कुमार फरवरी, 2014 तक केरल के राज्यपाल थे।

मृदुला सिन्हा

गोवा में राज्यपाल मृदुला सिन्हा एक साथ कई खूबियों की मालकिन हैं। मुजफ्फरपुर में 1942 में जन्मीं मृदुला ने कभी चुनाव नहीं लड़ा लेकिन फिर भी अपने क्षेत्र और पार्टी के लिए आदर्श नेता साबित हुई हैं। अपने पति डा. रामकृपाल सिन्हा के साथ सामाजिक कार्य करते-करते मृदुला ने लोगों के मन में घर बना लिया और उनकी समरसता के गुणों ने उन्हें राज्यपाल के सर्वोच्च पद तक पहुंचा दिया। वे एक निपुण कथाकार हैं और लघु कथाओं पर उन्होंने विशेष कार्य किया है।

रामदुलारी सिन्हा

रामदुलारी सिन्हा 1952 में गठित बिहार की पहली विधानसभा की सदस्य थीं। 1962 में वे पटना संसदीय क्षेत्र से लोकसभा पहुंचीं और 1988 में केरल की राज्यपाल बनीं। राज्य कैबिनेट में शामिल होने के साथ-साथ वे कई बार केंद्रीय मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री भी बनीं। रामदुलारी सिन्हा उन चंद महिला राजनेताओं में शुमार रही हैं जिन्होंने बिहार की राजनीति को एक खास मुकाम तक पहुंचाने में अपना श्रेष्ठ योगदान दिया है। उन्होंने साबित कर दिखाया है कि महिलाएं किसी भी काल में और किसी भी समाज में पुरुषों से कम नहीं रही हैं। उनका विवाह ठाकुर जुगल किशोर सिन्हा से हुआ जबकि उनके पुत्र डा. मधुरेंद्र कुमार सिंह हैं। 1922 को बिहार के गोपालगंज में जन्मीं रामदुलारी सिन्हा की मृत्यु 1994 में हो गई।

गौर कीजिए

दुनिया के 200 देशों में से महज 28 देशों ने ही राजनीति में महिलाओं के महत्व को स्वीकारा है।

बिहार की बेटियां

सुमित्रा देवी

1922 में मुंगेर में जन्मीं सुमित्रा देवी ने राज्य में कांग्रेस पार्टी का झंडा बुलंद किया। 1952 में राज्य की पहली विधानसभा की वे सदस्य रहीं और 1963 में राज्य की पहली महिला मंत्री बनीं। वे पूर्व लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार की सास थीं। उनका निधन 2001 में हो गया।

श्यामा सिन्हा

राजधानी पटना में 1942 को जन्मीं श्यामा सिंह बिहार के औरंगाबाद से सांसद रह चुकी हैं। उनके पति निखिल कुमार नगालैंड और केरल के राज्यपाल रह चुके हैं। श्यामा सिन्हा राजनीति के साथ-साथ कुशल बागवानी के लिए भी जानी जाती हैं।

मीरा कुमार

1945 में बिहार में जन्मीं मीरा कुमार ने देश की पहली महिला लोकसभा अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त किया है। कुशल कूटनीतिज्ञ और वकील होने के साथ-साथ वे 8वीं, 11वीं, 12वीं, 14वीं और 15वीं लोकसभा की सदस्य रह चुकी हैं। वे ख्यात सेनानी बाबू जगजीवन राम और इंद्राणी देवी की पुत्री हैं।

किरण घई

1949 को जन्मीं किरण घई कई विधाओं की ज्ञाता भी हैं। वे भाजपा की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं, बिहार विधान परिषद की सदस्य हैं, विधान परिषद की बाल संरक्षण एवं महिला सशक्तीकरण कमेटी की चेयरपर्सन हैं और पटना वीमेंस कॉलेज के हिन्दी विभाग में रीडर भी हैं।

राबड़ी देवी

राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री होने का सम्मान राबड़ी देवी को मिला। 1959 में जन्मीं राबड़ी देवी को तीन बार मुख्यमंत्री बनने का मौका मिला। उन्होंने अपने पति राजद प्रमुख व पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद के जेल जाने के बाद राज्य की सत्ता संभाली थी। वे विधान परिषद की सदस्य भी हैं।

वीणा देवी

बिहार के बाहुबली सांसद रह चुके सूरजभान की पत्नी वीणा देवी ने 2014 के लोकसभा चुनाव में अपने प्रबल प्रतिद्वंद्वी जदयू के ललन सिंह को हराकर मुंगेर लोकसभा सीट पर कब्जा कर लिया। वीणा देवी लोक जनशक्ति पार्टी की उम्मीदवार थीं जिसका गठबंधन भाजपा से था।

रंजीता रंजन

सुपौल से कांग्रेस सांसद रंजीता रंजन ने अपने क्षेत्र में किये कामों से अलग पहचान बनाई है। अपने पति व राजद सांसद पप्पू यादव के कारण भी वे अक्सर चर्चा में रही हैं। पप्पू यादव के अजीत सरकार हत्याकांड में जेल जाने के बाद रंजीता राजनीति में आईं लेकिन जल्दी ही एक खास मुकाम पा लिया।

सुखदा पांडेय

राजधानी पटना के प्रतिष्ठित मगध महिला कॉलेज की प्राचार्या रह चुकीं सुखदा पांडेय राज्य भाजपा का प्रमुख चेहरा हैं। बक्सर से विधानसभा चुनाव जीतने से पहले सुखदा ने शिक्षा के क्षेत्र में भी अच्छा योगदान दिया। उन्होंने राज्य के कला एवं संस्कृति मंत्री के पद पर रहते हुए उल्लेखनीय कार्य किये।

गौर कीजिए

वर्ष 2014 के आम चुनाव में नई महिला मतदाताओं की संख्या 41.4 प्रतिशत रही।

राज्य से

राजनीति के खेल में मोहरा बनतीं महिलाएं

कीर्ति

(राज्य कार्यक्रम समन्वयक महिला सामाख्या, बिहार। इसके पूर्व ये एक्शन एड, बिहार में प्रोग्राम मैनेजर के तौर पर भी कार्य कर चुकी हैं)

9 जून 2014 को माननीय राष्ट्रपति, श्री प्रणव मुखर्जी, ने संयुक्त सदन को संबोधित करते हुए नई सरकार की संसद और विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने की वचनबद्धता दोहराई। सभी दलों की महिला सांसदों ने मेजें थपथपाकर इसका स्वागत किया। पूर्ण बहुमत से आई सरकार की मंशा जाहिर होते ही उन महिला संगठनों व नारीवादियों में पुनः आशा जगी होगी जो पिछले अठ्ठारह वर्षो से महिला आरक्षण बिल पारित करवाने के लिए जद्दोजहद करते रहे हैं। लेकिन जल्द ही यह छोटी सी आशा बेबुनियाद लगने लगी होगी जब माननीय प्रधानमंत्री, श्री नरेन्द्र मोदी, ने 15 अगस्त 2014 को महिलाओं की सुरक्षा को लेकर तो जोरदार भाषण दिया पर महिला आरक्षण के वादे को बड़ी सरलता से भूल गए।

महिला आरक्षण विधेयक द्वारा संविधान में संशोधन कर लोकसभा की कुल 543 में से 181 सीटें और 28 विधानसभाओं की कुल 4,109 में से 1,370 सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की जानी हैं। पिछलें अठ्ठारह वर्षो का सफर महिला आरक्षण विधेयक के लिए अड़चनों से भरा रहा। श्री देवेगौड़ा की सरकार ने विधेयक को 12 सितंबर 1996 को लोक सभा में पहली बार पेश किया था। आवश्यक समर्थन नहीं मिलने पर इसे सांसद गीता मुखर्जी की अध्यक्षता में गठित संयुक्त संसदीय समिति को विचारार्थ सौंपा गया। समिति ने 9 दिसंबर 1996 को अपनी रिपोर्ट दी।

तत्पश्चात श्री अटल बिहारी वाजपेयी की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार ने इसे 1998 की बारहवीं लोकसभा व 1999 की तेरहवीं लोकसभा में पेश किया। 2003 में लोकसभा में दो बार किए गए असफल प्रयासों के बाद 2008 में विधेयक को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने राज्य सभा में पेश किया जहां इसे 9 मार्च 2010 को ऐतिहासिक मंजूरी मिली। विधेयक मई 2014 तक लोकसभा में 108वें संवैधानिक संशोधन के रूप में लंबित रहा और लोकसभा भंग होने के साथ स्वतः ही रद्द हो गया। अप्रैल 2014 में भाजपा ने अपने चुनावी घोषणापत्र में कहा था कि वह महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए प्रतिबद्ध है। इसी आलोक में माननीय राष्ट्रपति महोदय व प्रधानमंत्री के भाषणों से एक बार फिर महिला आरक्षण विधेयक पर सांप-सीढ़ी का खेल शुरू हो गया।

यह सांप-सीढ़ी का खेल नया नही है और तब तक चलता रहेगा जब तक महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को लेकर राजनीतिक दलों में इच्छाशक्ति की कमी बनी रहेगी। सर्वविदित है कि सभी राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण समितियों- प्रदेश कार्यकारिणी, संसदीय बोर्ड, राज्य परिषद, केन्द्रीय कार्यकारिणी, केन्द्रीय परिषद, अनुशासन समिति आदि- में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य है। पर्याप्त संख्या में महिलाओं को चुनावी मैदान में उतारने में भी सभी दल कोताही बरतते हैं। बिहार विधान सभा चुनाव 2010 में सबसे कम राजद ने 6 प्रतिशत महिलाओं को उम्मीदवार बनाया, लोजपा और कांग्रेस ने 8-8 प्रतिशत। लोजपा की बिहार प्रदेश कार्यकारिणी में 2.7 प्रतिशत महिलाएं है, वहीं राजद की कार्यकारिणी में 3.5 प्रतिशत। भाजपा ने केन्द्रीय कार्यकारिणी में महिलाओं को 28 प्रतिशत, भाकपा माले ने 9 प्रतिशत, जदयू ने 12.6 प्रतिशत और कांग्रेस ने 11 प्रतिशत जगह ही दी है।

जब पार्टी संगठन में ही महिलाओं के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन, समर्थन और स्थान नहीं है, जब पार्टियां यह मान कर चल रही हैं कि काबिल महिलाएं चुनाव नही जीत पाएंगी, केवल वही महिलाएं जीत सकती हैं जिनके पीछे बाहुबल, धनबल, राजनीतिक विरासत या फिर किसी व्यक्तिगत त्रासदी की वजह से सहानुभूति की लहर हो- तब संसद व विधान मंडल में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व कैसे दिख सकता है। आज लोक सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सिर्फ 11.43 प्रतिशत है जो अब तक का सर्वाधिक है। इसके पूर्व लोकसभा में 2009 में 10.82 प्रतिशत, 2004 में 8.16 प्रतिशत और 1999 में 9 प्रतिशत महिलाएं ही चुनकर आई थीं। राजनीतिक भागीदारी के दूसरे पहलू यानि राष्ट्र की सर्वोच्च निर्णायक भूमिकाओं में भी उनकी संख्या कम दिखाई देती है। 2006 में कैबिनेट मंत्रियों में केवल 3.45 प्रतिशत महिलाएं थीं, वहीं 2009 में 9.09 फीसद। वर्तमान सरकार की केन्द्रीय मंत्री परिषद के कुल 45 मंत्रियों में सिर्फ 7 महिलाएं हैं, यानि 15.55 फीसद। इसी प्रकार राज्य मंत्रियों में 2006 में 15.38 प्रतिशत महिलाएं थी और 2009 में 11.1 प्रतिशत। महिलाओं का

गौर कीजिए

2011 की जनगणना के मुताबिक देश में केवल 20 फीसद महिलाएं संगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।

अपर्याप्त प्रतिनिधित्व राजनैतिक दलों की समझ का फेर है या उनकी नीयत का खोट, यह उन महिलाओं को तय करना है जो बड़ी संख्या में वोट डालने निकल रही हैं।

2014 के आम चुनाव के दौरान अखबारों में लगातार रिपोर्ट आती रहीं कि महिलाएं पुरुषों से ज्यादा संख्या में वोट डालने निकल रही हैं। 16 राज्यों में जिनमें- बिहार भी है- महिला मतदाताओं का प्रतिशत पुरुषों से ज्यादा रहा। अपनी राजनीतिक भागीदारी को लेकर महिला मतदाताओं में चेतना बढ़ी है। पर शायद ही यह महिलाओं के लिए दलों के भीतर रुतबा बढ़ा सके। सभी राजनीतिक दलों में महिलाओं का वोट हासिल करने के लिए महिला प्रकोष्ठ हैं जो इस परिप्रेक्ष्य में और भी सक्रिय हो उठेगा। पर जैसे ही महिला प्रत्याशियों को चुनाव में खड़ा करने का सवाल आएगा उग्र पितृसतात्मक सोच दलों में हावी होने लगेगी। काबिल और जमीन से उभरी महिला नेता धनबल, बाहुबल और विरासत की राजनीति के लिए चुनौती हैं। ये वो नेता हैं जो वास्तव में आम महिलाओं की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं, न कि उन पतियों, पिताओं आदि रिश्तेदारों की महत्वाकांक्षाओं का जो अपनी सीटों से चुनाव लड़ने की स्थिति में नही हैं। यदि इस तरह की जुझारू महिला नेता बड़ी संख्या में चुनकर आ गईं तो महिलाओं के मुद्दों पर व उनके हक-अधिकार के लिए काम करेंगी। महिलाओं की सुरक्षा पर जोशीले भाषण ना देकर ऐसी आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक नीतियां एवं कानून लागू करेंगी जिससे पितृसत्ता के ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन हो, स्त्री-पुरुष समानता स्थापित हो। महिलाओं के लिए व्यक्ति, घर, समाज, और राज्य में सम्मान बढ़े, महिलाओं के प्रति इनका रवैया सहयोगी और सकारात्मक हो, और असुरक्षा जड़ से खत्म हो जाए।

हो सकता है कि आज के ज्यादातर विधायकों और सांसदों को ऐसी महिलाओं के चुनकर आने से परहेज हो और राजनीतिक दल सिर्फ चुनावी घोणापत्र में ही महिला आरक्षण की बात करते रह जाएं। वर्तमान में, बिहार की 34 महिला विधायकों में बड़ी संख्या ऐसी महिलाओं की हैं जिनके पति खुद चुनाव लड़ने की पात्रता खो चुके थे इसलिए पत्नियों को उनकी नैया पार लगाने की जरूरत पड़ी। ऐसी भी महिला विधायक हैं जिन्हें चुनाव जीत चुके पुरुष अपने दायरे का विस्तार करने के लिए आगे बढ़ा रहे है। ये महिला विधायक महिलाओं के मुद्दों से इत्तफाक तो दूर, कई बार उनकी जानकारी तक नही रखतीं। महिला उत्पीड़न की बड़ी से बड़ी घटना पर भी उनका वक्तव्य नहीं आता, किसी प्रकार की कार्रवाई कैसे करेंगी।

उल्लेखनीय है कि 2010 में राज्यसभा में महिला आरक्षण विधेयक पारित होने का प्रसंग भी नाटकीयता से भरपूर रहा। विधेयक पर चर्चा तभी हो पाई थी जब उपद्रवी सांसदों को मार्शल की मदद से उठाकर बाहर कर दिया गया। राज्य सभा ने अभूतपूर्व कदम उठाते हुए समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल व जनता दल यूनाइटेड के सात सांसदों को उनकी उद्दंडता के लिए बजट सत्र के बचे कार्यकाल के लिए निलंबित कर दिया। विधेयक को संप्रग के बाकी घटक दल, भारतीय जनता पार्टी, अन्नाद्रमुक, तेलगुदेशम पार्टी और वाम दलों का समर्थन मिला। पर तृणमूल कांग्रेस ने संप्रग सरकार का घटक दल होकर भी मतदान में भाग नहीं लिया। जनता दल यूनाइटेड संप्रग के अध्यक्ष को विधेयक पेश नहीं करने के लिए राजी करने की कोशिश करता रहा। समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल ने

Women's Representation in Parliament 1952-2009

S. No.	Year	Lok Sabha (Lower House)				Rajya Sabha (Upper House)			
		Total seats	Women Member	Men Member	Percentage Women	Total seats	Women Member	Men Member	Percentage Women
1	1952	499	22		4.4	219	16		7.3
2	1957	500	27		5.4	237	18		7.5
3	1962	503	34		6.8	238	18		7.6
4	1967	523	31		5.9	240	20		8.3
5	1971	521	22		4.2	243	17		7.0
6	1977	544	19		3.4	244	25		10.2
7	1980	544	28		7.9	244	24		9.8
8	1984	544	44		8.1	244	28		11.4
9	1989	517	27		5.3	245	24		9.7
10	1991	544	39		7.2	245	38		15.5
11	1996	543	39		7.2	223	20		9.0
12	1998	543	43		7.9	245	15		6.1
13	1999	543	49		9.0	245	19		7.8
14	2004	545	45		8.2	245	28		11.4
15	2009	545	59		10.8	245	21		8.57

Note CSDS Data Unit
Source :- 1. India Ministry of Husuuman Resource Devlopment of Women and Child Devlopment.
(2004).Government of India, 2 & 3rd Periodic Report on the Elimentation of All Forms of Discrimination against Women: CEDAW Periodic Report New Delhi. P. 86.
2. www.parliamentofindia.nic.in

गौर कीजिए

2011 की जनगणना के अनुसार गांवों में महिला कामगार को प्रतिदिन औसत 201.56 रुपये मिलते हैं जबकि पुरुषों को 322. 28 रुपये मिलते हैं।

संप्रग सरकार से समर्थन वापस लेने की धमकी दी। बसपा के सांसद वाकआउट कर गए क्योंकि उनको विधेयक के मौजूदा प्रारूप से विरोध था। विधेयक के विरुद्ध दलीलों में कुछ ही तार्किक हैं बाकी खुले तौर पर उग्र पितृसत्तात्मक उदगार। 1 जून 1997 में जनता दल यूनाइटेड के श्री शरद यादव ने पूछा था कि क्या ये बलकटी औरतें (महिला सांसद) हमारी औरतों के लिए बोल सकती हैं। संसद में 6 मई 2008 को सुश्री रेणुका चौधरी (महिला एवं बाल विकास मंत्री) ने विधि मंत्री, श्री भारद्वाज, को अबु आजमी से पिटने से बचाया। 13 जुलाई 1998 को राजद के सांसद श्री सुरेन्द्र प्रसाद यादव ने लोक सभा स्पीकर, श्री बालयोगी, से विधेयक की प्रति छीनकर फाड़ दी थी । 2005 में भारतीय जनता पार्टी के पूर्व समर्थन के बावजूद जब सुश्री उमा भारती और अन्य भारतीय जनता पार्टी के नेताओं ने महिलाओं के कोटा में जातिगत कोटा की मांग की तब भारतीय जनता पार्टी भी चुप बैठ गई।

इस पृष्ठभूमि में सभी राजनीतिक दलों की सहमति बनाकर महिला आरक्षण विधेयक पास करने की कोशिशें बेमानी सिद्ध होती रहेंगी। सर्वसम्मति बनाने के कई फॉर्मूले लगातार नाकामयाब होते रहे हैं। दो सदस्यीय चुनाव क्षेत्र, महिला उम्मीदवारों को हर पार्टी में ही आरक्षण मिले जैसी कई धारणाएं आई और गई। महिला आरक्षण बिल के वर्तमान स्वरूप के विरोध में जमीनी हकीकत से जुड़ा एकमात्र विचारनीय विवाद है महिलाओं के लिए आरक्षण के अन्दर जातिगत आरक्षण ताकि अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं को भी राजनैतिक नेतृत्व के वही अवसर मिलें जो उच्च वर्ग व जाति की महिलाओं को आरक्षण से मिलेंगे। सही अर्थो में अब यह भी विवाद का विषय नही रह गया है क्योंकि पंचायतों में कोटा के भीतर कोटा को लेकर पिछले पन्द्रह वर्षो से कामयाब फॉर्मूला स्थापित किया जा चुका है। इसी फॉर्मूले को विधान सभा और संसद के लिए लागू कर देना सबसे सरल उपाय है।

जब यह मालूम है कि कमोबेश सभी राजनेता महिला आरक्षण को लेकर उदासीन हैं तो वह कौन सी ताकत है जो उनको विधेयक पारित करने को मजबूर करे। यहीं पर अहसास होता है कि महिला आंदोलन कितनी कमजोर कर हाशिये पर धकेली जा चुकी है। कुछ बिखरे हुए प्रयास महिला संगठन व नारिवादी लगातार करते आ रहे हैं पर ताकत पुरजोर नहीं दिखती। कई नारिवादी यह प्रश्न भी उठाते रहे है कि 33 प्रतिशत की सीमा किस आधार पर तय की गई है और किसने की है। जब महिलाएं देश की आधी आबादी हैं तो आरक्षण 50 प्रतिशत क्यों नहीं? यदि राजनीतिक इच्छाशक्ति हो या जनान्दोलन में ताकत हो तो 50 प्रतिशत के लिए संविधान में जरूरत मुताबिक संशोधन को कौन रोक सकेगा। नागरिक समाज, महिला संगठन व नारीवादियों को हतोत्साहित होने की नहीं, बल्कि नए सिरे से संगठित और संयुक्त प्रयास करने की जरूरत है। आज हमारे पास अनुकूल परिस्थितियां भी हैं।

नंबर एक की पंचायत में चुनकर आ रही महिलाएं ना सिर्फ कई मोर्चे पर अपनी काबलियत सिद्ध करने में सफल रही हैं बल्कि उन्होंने जमीनी स्तर पर महिलाओं के नेतृत्व को सामाजिक स्वीकृति भी दिलानी शुरू कर दी है। आश्चर्य नहीं कि बिहार में पंचायती राज में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण है पर 1999-2009 के बीच यहां पंचायतों में 54.12 प्रतिशत महिलाएं चुनकर आईं- यानि आरक्षित सीटों से भी ज्यादा। बिहार में यह अपवाद नहीं, बार-बार हो रहा है। इन कर्मठ महिलाओं की राजनीतिक महत्वकांक्षा धीरे-धीरे बुलंद होगी और आशा है कि पितृसत्तामक सोच की गुलाम नहीं रहेगी। ये भी आगे चलकर विधानसभा और संसद में अपनी पैठ बनाना चाहेंगी। याद रहे कि इन महिलाओं में हर धर्म, जाति और वर्ग की महिलाएं हैं जो कि सामाजिक-राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण में भी सहायक होगा।

दूसरा अनुकूल तथ्य है महिलाओं के वोटों की बढ़ती संख्या। यह तो वक्त ही बताएगा की महिला प्रत्याशी इन वोटों पर कब्जा कर पाएंगी कि नहीं। महिला संगठनों और महिला आंदोलन के प्रयासों से यह वोट उन महिला प्रत्याशियों को मिल सकता है जिन्हें उन संगठनों का समर्थन प्राप्त हो। भारतीय राजनीति के पितृसतात्मक-वंशवादी चरित्र, जहां धनबल और बाहुबल का बोलबाला है, वहां कई स्तरों पर अनुकूल सामाजिक परिस्थितियां तैयार करने की जरूरत है ताकि महिलाएं भारतीय जनतंत्र में वोटर के साथ-साथ लीडर के रूप में भी सशक्त हों। महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में आरक्षण एक अनिवार्य कदम है। हमें अब यह देखना है कि पूर्ण बहुमत से आई वर्तमान सरकार महिलाओं को 33 प्रतिषत आरक्षण देकर उनकी कसौटी पर खरी उतरती है या नहीं। इससे यह भी पता चलेगा कि वह महिला सशक्तिकरण के प्रति व्यापक व गहरी सोच रखती है या उनको सुरक्षा-असुरक्षा के मायाजाल में उलझाए रखना चाहती है।

गौर कीजिए

ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत स्वरोजगार जुटाने में महिलाओं का योगदान 81 फीसद है।

कानून नहीं, उनका क्रियान्वयन होना चाहिए

भारतय संसद में महिला आरक्षण के लिए विभिन्न महिला संगठनों द्वारा किये गये आंदोलनों एवं कई राजनीतिक दलों के निरंतर प्रयासों के बावजूद आज तक संसद में महिलाओं को आरक्षण प्राप्त नहीं हो सका है। इसके कारण विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की संसद में आधी आबादी का प्रतिनिधित्व अभी भी 1.25 प्रतिशत से 10.6 प्रतिशत के बीच झूल रहा है।

भारतीय महिला फेडरेशन की वरिष्ठ नेता एवं इतिहासकर गार्गी चक्रवर्ती बताती हैं कि स्वतंत्रता आंदोलनों में शुरू से ही महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। वर्ष 1942 की क्रान्ति की नायिका अरुणा आसफ अली किशोरावस्था में ही इस आंदोलन में कूद पड़ी थीं लेकिन आजादी मिलने के बाद धीरे-धीरे उन्हें भी यह अहसास होने लगा कि देश तो आजाद हो गया लेकिन महिलाएं हाशिये पर ही खड़ी रह गईं। इसी सोच के साथ वर्ष 1954 में अरुणा आसफ अली ने भारतीय महिला फेडरेशन (NFIW) की स्थापना की। इसके बाद महिला अधिकारों के लिए आंदोलनों में और तेजी आई। गार्गी बताती हैं कि हम सब सोचते थे कि विकास के अन्य मोर्चों को जीत लेने के बाद महिलाएं खुद इतनी सबल हो जाएंगी कि उन्हें राजनीतिक भागीदारी निभाने का मौका स्वतः ही दिया जाने लगेगा। 1975 में जब 'टुवर्ड्स इक्वलिटी' नामक दस्तावेज आया जिसमें महिलाओं की स्थिति का सूचक लिंगानुपात को माना गया था, तो उस वक्त तक महिला संगठनों में यह असमंजस की स्थिति थी कि आरक्षण के लिए संघर्ष किया जाय अथवा यह प्राकृतिक रूप से हमें उपलब्ध हो जाएगा। परंतु साल दर साल बीतते गये, किसी भी राजनीतिक दल ने महिलाओं की भागीदारी सही मायने में तय नहीं की। तब इसके बाद महिला संगठनों ने महिला आरक्षण के लिए आंदोलन शुरू किया। कई राजनीतिक उतार-चढ़ावों के क्रम में महिला आरक्षण की जबर्दस्त मांग और अपनी रणनीति के तहत तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रयासों से वर्ष 1992 में 73वां और 74वां संविधान संशोधन के रूप में त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण मिला। इस प्रकार पहली बार महिला आरक्षण का अधिकार अस्तित्व में आया और भारतीय राजनीति में स्पष्ट रूप से महिलाओं का प्रवेश हुआ। इसके बाद संसद एवं विधानसभाओं में महिला आरक्षण की मांग के लिए आंदोलनों में तेजी आई। 1996 में संयुक्त मोर्चा की सरकार ने एक बार फिर महिला आरक्षण विधेयक को सदन के सामने रखा लेकिन राष्ट्रीय राजनीति में दखल रखने वाले दलों ने इसे पारित नहीं होने दिया। उन्हें डर था कि आरक्षण लागू होते ही पुरुष वर्चस्व वाली लोकसभा में 181 महिलाओं को स्थान मिल जाएगा। वे यह नहीं सोच पाये कि बिना महिलाओं की उन्नति के यह राष्ट्र विकसित देशों की कतार में नहीं आ पाएगा।

डा. शरद कुमारी

(1986 से बिहार महिला समाज की सदस्य तथा वर्तमान में महासचिव। साथ ही नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वीमेन की कार्यकारिणी सदस्य।)

मानव विकास रिपोर्ट 2013 के अनुसार लिंगभेद करने वाले 148 देशों की सूची में भारत 132वें स्थान पर है। यहां 50.4 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में महज 26.6 प्रतिशत महिलाएं ही माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं। वहीं श्रमिक बाजार में पुरुषों के 80.7 प्रतिशत के मुकाबले महिलाएं केवल 29 प्रतिशत ही मौजूद हैं। जमीन जायदाद के मालिकाना हक के मामलों में महिलाओं का हिस्सा सिर्फ 4 प्रतिशत है जबकि कुल खाद्यान्न का 73 प्रतिशत उपज महिलाओं द्वारा किया जाता है (एनएसएस 66वां, 2009-10)। प्रति एक लाख गर्भवती महिलाओं में से दो सौ की मौत हो जाती है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक वर्ष 2010 की तुलना में महिलाओं के साथ अपराध में 7.11 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ये आंकड़े देश में महिलाओं की स्थिति को बयां करते हैं। ऐसा नहीं है कि देश ने अब तक महिलाओं के हित से जुड़े मुद्दों पर निर्णय नहीं लिये हैं बल्कि भारत कई उन अंतरराष्ट्रीय संधियों का हिस्सा है जो महिलाओं की प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। भारत ने मानवाधिकार संबंधी समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं जिनमें आईसीईएससीआर, सीईआरडी, सीईडीएडब्ल्यू तथा समानता एवं भेदभाव रहित अंतरराष्ट्रीय कानूनों का स्पष्ट तथा मजबूती से पालन किया जाना सुनिश्चित किया गया है। देश में इन सबसे जुड़े कई कानून भी बनाये गये हैं लेकिन बात तब बनती है जब कानूनों का पालन सही ढंग से किया जाता है। हर तंत्र, हर विभाग और हर कानून पर पुरुषवादी रंग चढ़ा होने के कारण न तो सख्त कानून अपना प्रभाव दिखा पाते हैं और न ही लोकलुभावन योजनाएं रंग लाती हैं। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाने के बाद ही सूरत बदल सकती है। ये तभी संभव है जब नीति निर्धारण, कार्यपालिका और न्यायपालिका में महिलाओं को बराबर की हिस्सेदारी मिले।

गौर कीजिए

मनरेगा के तहत काम कर रही महिलाओं की संख्या 51 फीसद है।

राज्य से

बंदिशों के बावजूद जारी हैं पहलकदमियां

शाहिना परवीन

(प्रोग्राम ऑफीसर, हंगर प्रोजेक्ट, बिहार। राज्य में पंचायती राज व्यवस्था पर वर्ष 2006 से ही काम कर रही हैं।)

आज भी पंचायत में महिला नेतृत्व को सम्मानजनक स्थान न मिलना, परिवार द्वारा स्वयं काम करने की इजाजत नहीं देना, सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों द्वारा उनकी कार्य कुशलता पर प्रश्न चिन्ह लगाना आदि कई स्तर पर महिला जनप्रतिनिधि लड़ाई लड़ रहीं हैं।

वर्ष 2006 से ही बिहार के गांवों और कस्बों की महिलाओं को अपने गावों के विकास को अपनी सोच के अनुसार चलाने के लिए मौका मिला। महिलाओं की अगुआई में बिहार में पंचायती राज व्यवस्था नई दिशाएं तय कर रही है। पंचायती राज में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण मिला यानि पंचायत की सत्ता में महिलाएं बराबर की हकदार बनीं। नई आकांक्षाओं, उमंगों के साथ गांव-गांव में महिलाएं राजनीतिक अधिकार के इस्तेमाल के लिए कुलांचे भरने लगीं। तत्कालीन राज्य सरकार ने इस 50 फीसदी आरक्षण पर देश में इतिहास बनाने की बात कही तो इसके एवज में वापस सत्ता भी मिली। लेकिन क्या महिला नेतृत्व की राहें इतनी आसां रहीं। निःसंदेह आरक्षण ने राजनीतिक अधिकार की प्राप्ति का अवसर महिलाओं को दिया। जहां पहले ग्राम पंचायत की बैठकों में महिलाओं की उपस्थित शायद ही देखी जाती थी अब 'उपस्थिति की राजनीति' में तो जरूर महिलाएं दिख रहीं हैं। संख्या में 54 प्रतिशत (वर्ष 2006) और फिर इससे भी अधिक महिलाएं पंचायत के विभिन्न पदों पर काबिज हुई। यूं तो मतदाता के रूप में लंबी-लंबी कतारों में खड़ी होकर अपनी उपस्थिति पहले से ही दर्ज करा रही थी, लेकिन राजनीति में सीधी भागीदारी ने इन्हें सार्वजनिक भूमिका में आने की खुली आजादी दी।

वर्ष 2006 में जहां निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों ने 'उपस्थिति की राजनीति' से स्थानीय सत्ता में दस्तक दी वहीं वर्ष 2011 में कई महिलाएं पुनः जीत कर आईं तो कुछ ने स्वयं अपना रास्ता चुना और पंचायतों में अपनी सशक्त भागीदारी दर्ज कराने में जुट गईं। जाहिर तौर पर महिलाओं के नेतृत्व के सफर की शुरूआत बहुत दुश्वारियों से भरी रही। जिस समाज में घर के अंदर पुरुषों के बराबर खाट पर बैठने तक की छूट न हो, वह पंचायत की बैठकों और ग्रामसभा में भला कैसे बैठतीं। महिलाओं की अगुआई में समाज विकास और बदलाव की बातें करेगा, यह सोचना ही काफी था। शुरू-शुरू में गांव के नुक्कड़ों पर एक आवाज हर जगह सुनाई देती थी - 'महिला को पंचायत में बैठा कर नाश दिया। न पढ़ी, न लिखी, न बोलने का सउर न काम का तरीका, कुछ तो नहीं पता इन्हें। जाने दो काम तो इनके मर्दों को ही करना है।'' दूसरी तरफ घर के पुरुषों ने चुनाव पूर्व ही यह तय कर लिया कि अपनी राजनीतिक इच्छाओं को अपने परिवार की महिला के नाम पर पूरा करेंगे। ज्यादातर लोग पंचायत चुनाव को घर की विरासत समझ बैठे। यहां तक की जीत की माला भी परिवार के पुरुषों ने अपने गले में डाली। कुछ महिलाओं ने इस यथास्थिति को स्वीकार किया तो कुछ के लिए अपनी पहचान की लड़ाई का रास्ता खुला।

परिवार के पुरुषों की छाया में ही बैठकों और प्रशिक्षणों में आते-जाते महिला जनप्रतिनिधियों में अपने पद की गरिमा, महत्व एवं पहचान की समझ बनने लगी। उन्हें अपनी राजनीतिक भूमिका के निर्वहण करने की समझ तो धीरे-धीरे आ गई। पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधियों के नेतृत्व क्षमता, कार्यकुशलता पर लगातार सवाल उठाए जाते रहे हैं। यह सवाल परिवार से लेकर सरकारी दफ्तरों में बैठे अधिकारियों और कर्मचारियों के द्वारा उठाए जा रहे थे। आज भी पंचायत में महिला नेतृत्व को सम्मानजनक स्थान न मिलना, परिवार द्वारा स्वंय काम करने की इजाजत नहीं देना, सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों द्वारा उनकी कार्य कुशलता पर प्रश्न चिन्ह लगाना आदि कई स्तर पर महिला जनप्रतिनिधि लड़ाई लड़ रहीं हैं।

बहरहाल, इन तमाम चुनौतियों के बावजूद महिला जनप्रतिनिधियों ने हार नहीं मानी है। इन्होंने धीरे-धीरे स्वयं बैठकों में जाना, गांव की जनता के दुख दर्द को सुनना समझना और कार्यकारणी की बैठकों में मनमानी के खिलाफ अपना विरोध दर्ज करना शुरू कर दिया है। ग्राम पंचायत की महिला जनप्रतिनिधियों ने विकास को सही मायने में समझा और जाना है। अगर इनके कार्यो को देखा और परखा जाए तो जितनी शिद्दत से इनकी नजर अपने पंचायत और वार्ड के बच्चों, बुजुर्गो, महिलाओं और जरूरतमंदों पर होती है उतनी शायद पुरुष प्रतिनिधि की नहीं होती। यह बात सच है कि महिलाएं नली, गली, खंडजा एवं अन्य निर्माण कार्य में महज इसलिए रुचि नहीं लेतीं

गौर कीजिए

15 से 19 साल की 46 फीसद महिलाओं को निर्णय लेने का अधिकार नहीं दिया जाता है।

क्योंकि इसमें कमीशन और ठेकेदारी का मामला होता है। जहानाबाद जिले के काको प्रखंड के सुलेमानपुर पंचायत की उपमुखिया मैंनामनती बड़े गर्व से कहती हैं, " मैं अपने पंचायत में बच्चों को आंगनबाड़ी केन्द्र पर भेजना, केन्द्र पर गरम पका पोषक आहार दिलवाना, स्कूल में नियमित मध्याह्न भोजन मिलना, पढ़ाई छोड़ चुकी लड़कियों को स्कूल से जोड़ना, महिलाओं के साथ मार-पिटाई होने पर परिवार को समझाना और जरूरत पड़ने पर कानूनी कार्रवाई करने जैसे काम बखूबी कर रही हूं। अभी तक मैं अपने पंचायत के लगभग 50 बूढ़े लोगों को पेंशन दिलवा चुकी हूं। नली, गली बनवाने में एक तो रिश्वत लेने देने का टेंशन और दूसरा घर के लोगों को ठेकेदारी लेने का दबाव। जो मैं कर रही हूं, क्या वह विकास नहीं।"

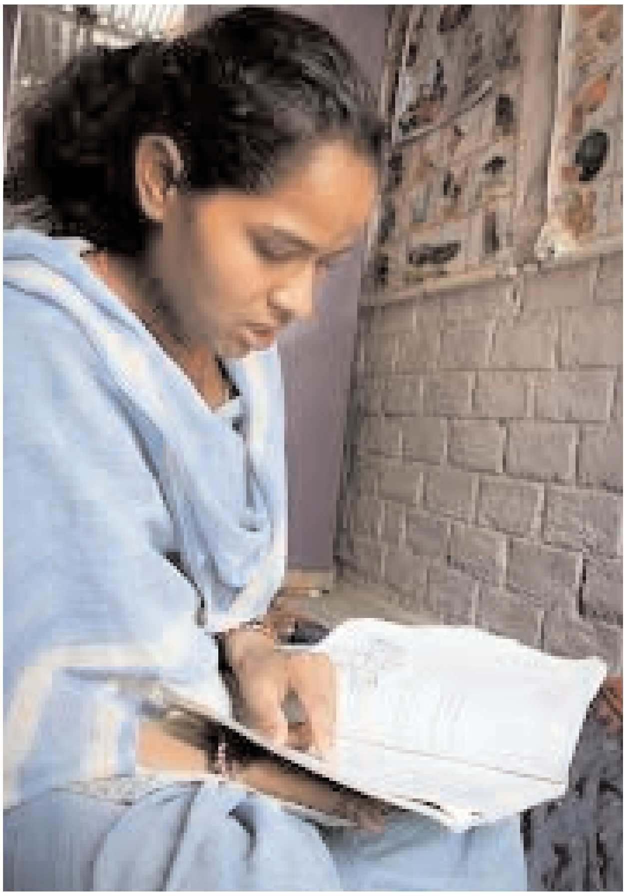

मुजफ्फरपुर के मड़वन प्रखंड के पकड़ी पकोहीं पंचायत की वार्ड सदस्य मीरा, नीलू, मीना, ममता आदि एकजुट होकर अपनी पंचायत में महिलाओं पर हो रहे अत्याचार और बाल विवाह को रोकने के लिए लगातार काम कर रही हैं। रोहतास जिले के सुदूर नौहट्टा प्रखंड की महिला जनप्रतिनिधि अपने वार्ड में कुपोषित बच्चों की पहचान कर पोषण पुनर्वास केन्द्र भेजने का काम कर रही हैं। रोहतास के ही तिलौथू के चितौली पंचायत की लीलावती देवी कहती हैं, " कौन कहता है कि महिलाएं पंचायत नहीं चला सकतीं। मैं, अन्य महिला वार्ड सदस्यों के साथ मिलकर पंचायत में मनरेगा से लेकर गांव की साफ-सफाई तक का काम करवाती हूं। पंचायत के जरूरतमंद लोगों को वृद्धा, विधवा और विकलांग पेंशन दिलवाने से लेकर प्रतिदिन आंगनबाड़ी केन्द्र और मध्याह्न भोजन को भी देखती हूं लेकिन कुछ लोग हमारे काम से खुश नहीं हैं और वही लोग महिला प्रतिनिधियों के बारे में उल्टी सीधी बातें कहते हैं।"

मुजफ्फरपुर के कांटी की महिला जनप्रतिनिधियों ने ग्राम सभा में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने के लिए अपना अलग तरीका खोजा है। रामनाथ धमौली पंचायत की महिला जनप्रतिनिधि लक्ष्मी, इन्द्राणी और रीता कहती है, 'जब कभी भी ग्राम सभा लगती थी, गांव के पुरुष लोग आगे जाकर पूरी जगह घेर लेते थे। हम सभी महिलाएं या तो पीछे रह जाती थीं या फिर किनारे खड़े रहना पड़ता था। गांव के लोग ससुर, भैसुर का हवाला देकर किनारे रहने बोलते थे। अगर बिना देखे किसी मर्द के बगल में खड़े हो जाते तो गांव में खूब बेइज्जती होती थी। हमलोगों ने सोचा कि ऐसे तो हम कभी भी ग्रामसभा में अपनी बात नहीं कह पाएंगीं। अब हम सभी महिला जनप्रतिनिधि अपने-अपने वार्ड की महिलाओं के साथ ग्राम सभा के दिन बैठक से पहले ही जाकर सबसे आगे बैठ जाते हैं।" जमुई जिले के झाझा प्रखंड के रजला कला पंचायत की मुनैजा कहती हैं, "हमसे पहले भी कई लोग गांव के नेता बने। पहले से मुखिया भी बनते रहे। लेकिन किसी ने भी बीड़ी मजदूरी कर रही छोटी-छोटी लड़कियों और बड़ी संख्या में टीबी की शिकार हो रही महिलाओं के बारे में नहीं सोचा। मेरी कोशिश है बीड़ी बनाने के काम से बच्चियों को निकाल कर स्कूलों में दाखिला दिलाना।" मधुबनी की रहिका के जगतपुर पंचायत की महिला वार्ड सदस्य नैना, लीला, मालती, आशा एवं अन्य ने मिलकर जब अपने पंचायत में एक लड़की के साथ हुए बलात्कार के मामले में हस्तक्षेप कर पंचायत बुलाई, तो पहले लोगों ने कहा कि महिलाओं के द्वारा बुलाए पंचायत में हमलोग नहीं जाएंगे। इन महिला जनप्रतिनिधियों ने इस बात की परवाह किए बिना न सिर्फ महिलाओं की सभा बुलाई बल्कि आरोपी को सजा दिलाने में सफल हुई।

जाहिर तौर पर महिला के हाथ में सत्ता, संसाधन एवं शक्ति को सदियों से स्थापित पितृसत्तात्मक समाज सहजता से स्वीकार नहीं करेगा। ऐसे में महिला जनप्रतिनिधियों को स्वयं की पहचान, सम्मान, सुरक्षा से लेकर

गौर कीजिए

पूरे देश में केवल 59.6 फीसद महिलाओं को मर्जी से पैसे खर्च करने दिया जाता है।

निर्णय लेने की आजादी के लिए परिवार, समाज से लेकर व्यवस्था तक से लगातार लड़ाई लड़नी होगी। लेकिन इन बाधाओं के बावजूद महिलाओं ने नेतृत्व की राह नहीं रोकी। ज्यादातर महिला जनप्रतिनिधियों ने विकास को सही संदर्भो में पहचाना और पंचायत में पहल की हैं। जहां एक ओर अमिता देवी ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा दिया वहीं सीवान की खुशबुन खातून ने अपने पंचायत में महिला उत्पीड़न को मुद्दा बनाया। वीणा देवी अपनी सामाजिक समरसता के साथ विकास के लिए जानी जाती है, तो रोहतास की पौठरिया देवी ने महिलाओं और किशोरियों के स्वास्थ्य के मुद्दे को उठाया है। यह फेहरिस्त काफी लंबी है। संजू देवी, सबिता, फरहा, राजवंशी, गीता, बचिया, साबिया, मीना जैसी सैकड़ों महिला जनप्रतिनिधि तमाम बंदिशों के बावजूद अपने इरादे पर अडिग हैं। ये सभी परिवार से लेकर पंचायत के विकास तक का सफर तय कर रही हैं।

ज्यादातर ग्राम पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधि यह मानती हैं कि वे आम नहीं खास महिलाएं हैं जिनके ऊपर अपने पंचायत और वार्ड की जिम्मेदारी है। आरक्षण से मिले अवसर को न सिर्फ वे पहचान रही हैं बल्कि इस अवसर का बेहतर इस्तेमाल करने के लिए लगातार संघर्षरत है। कुल जमा यह कहा जा सकता है कि महिला जनप्रतिनिधियों ने उन सारी आशंकाओं को तोड़ा है, जो महिलाओं के नेतृत्व क्षमता और काबिलियत को हमेशा कठघरे में खड़ा करते रहे हैं। बेशक इस बात में कोई दो राय नहीं है कि सशक्तीकरण के लिए महिलाओं के हाथ में सत्ता का आना जरूरी है जिसके लिए आरक्षण सबसे बुनियादी जरूरत है। पंचायतों में महिला नेतृत्व ने साबित किया है कि आप बस अवसर उपलब्ध कराएं, रास्ते तो निकल ही जाएंगे। लेकिन नीति निर्देशकों के पास यह महत्वपूर्ण सवाल भी है कि क्या सिर्फ पचास प्रतिशत आरक्षण ही काफी है ? दहलीज से बाहर कदम रख रही महिला नेतृत्व को राजनीति में स्थान के साथ ही संरक्षणात्मक एवं सहयोगात्मक व्यवहार की अपेक्षा करना भी लाज़मी है। मतदाताओं के रूप में इनकी उपस्थिति तो देखने मात्र के लिए हमेशा से रही है। लेकिन अब जरूरत है कि महिलाएं सशक्त भागीदारी की राजनीति करें। इसके लिए जरूरी है कि महिलाओं को न सिर्फ पंचायतों में बल्कि देश के सर्वोच्च सदन में सशक्त उपस्थिति का अवसर मिले।

जिस समाज में घर के अंदर पुरुषों के बराबर खाट पर बैठने तक की छूट न हो, वह पंचायत की बैठकों और ग्रामसभा में भला कैसे बैठती। महिलाओं की अगुआई में समाज विकास और बदलाव की बातें करेगा, यह सोचना ही काफी था। शुरू-शुरू में गांव के नुक्कड़ों पर एक आवाज हर जगह सुनाई देती थी - 'महिला को पंचायत में बैठा कर नाश दिया। न पढ़ी, न लिखी, न बोलने का सउर न काम का तरीका, कुछ तो नहीं पता इन्हें। जाने दो काम तो इनके मर्दों को ही करना है।'' दूसरी तरफ घर के पुरुषों ने चुनाव पूर्व ही यह तय कर लिया कि अपनी राजनीतिक इच्छाओं को अपने परिवार की महिला के नाम पर पूरा करेंगे। ज्यादातर लोग पंचायत चुनाव को घर की विरासत समझ बैठे। यहां तक की जीत की माला भी परिवार के पुरुषों ने अपने गले में डाली। कुछ महिलाओं ने इस यथास्थिति को स्वीकार किया तो कुछ के लिए अपनी पहचान की लड़ाई का रास्ता खुला।

गौर कीजिए

भारतीय शहरों में 13.9 फीसद महिलाओं को अपने फैसले लेने का हक नहीं दिया जाता है।

हमारी प्रतिनिधि

गांव-गांव तक बहती जीवन की धारा

बंद कमरे की खिड़कियों से झांकती काया को सूरज की एक किरण क्या मिली उसने तो सारी की सारी धूप ही खुद में समेट ली। निरीह काया ने फिर उस धूप को पूरी दुनिया में बिखेर दिया। ऐसी ही कहानी है घर की देहरी से निकलकर पंचायत तक की कमान संभालने वाली स्त्रियों की। जनप्रतिनिधि बनने का मौका मिलते ही इन महिलाओं ने अपना सारा कौशल और समय अपने गांव की सूरत बदलने में लगा दिया। पेश है कुछ ऐसी ही पंचायत प्रतिनिधियों का हाल।

गरीबों के लिए आवाज उठाती मुनैज़ा

"हमारी रोजी-रोटी बीड़ी बनाने पर निर्भर है। अगर बीड़ी बनी तो चूल्हा जला वरना फाका। लेकिन इस बीड़ी ने मेरे जैसी सैकड़ों बहनों का बाप, पति, बेटा और भाई छीना है। छोटे-छोटे बच्चे और लड़कियां बीड़ी बनाकर बेमौत मारे जा रहे हैं। इनके लिए राहत के नाम पर बस एक अस्पताल है, जहां जाकर टीबी का इलाज कराया जा सकता है। लेकिन झाझा के गांवों के लोगों की जिन्दगी बीमारी, भूख और गरीबी से दूर रहे, इसकी परवाह न सरकार को है और न ही समाज के नुमाइंदों को।" यह कहते हुए मुनैज़ा के चेहरे पर सिकन और आंखों में दर्द भर जाता है। झाझा प्रखंड के रजला कला पंचायत की पंचायत सदस्य मुनैजा ने अपने सुनहरे जीवन की

शुरूआत तेन्दु के पत्ते, तम्बाकू और धागे को अंगुलियों से लपेटते हुए शुरू किया। तब शायद इससे हो रहे नुकसान को बहुत गहराई से वह महसूस नहीं करती थी। लेकिन शादी के महज पांच साल के बाद ही बीड़ी बनाने के कारण टीबी से उनके पति की मौत हो गई। मुनैज़ा के सामने पहाड़ जैसी जिंदगी चार छोटे-छोटे बच्चों की परवरिश के साथ खड़ी थी। उस वक्त भी मुनैज़ा का सहारा था 1000 बीड़ी पर 50 रुपए की कमाई। इस वक्त मुनैज़ा को अहसास हुआ कि बमुश्किल एक वक्त की रोटी के एवज में उन जैसे सैकड़ों परिवार की जिंदगी दांव पर लगी होती है। ऐसे समय में उन्होंने ठाना कि बीड़ी के दुष्प्रभाव से जैसे भी हो अपने गांव रजला के लोगों को बचाएंगी। तभी उन्होंने गांव की महिला, पुरुष और बच्चों को लेकर झाझा के हेलाजोत अस्पताल में चेकअप कराने, निःशुल्क दवाई दिलवाने एवं लोग नियमित दवाई लें इस पर नजर रखने का काम शुरू किया। वह बीड़ी मजदूरों के लिए बीड़ी कार्ड बनवाने का भी काम करतीं, जिससे लोगों को स्वास्थ्य एवं आवासीय सुविधा मिल सके। "मुनैज़ा के इसी सेवाभाव एवं लगन ने हम सभी गांव वालों को बहुत प्रभावित किया। इसलिए अनारक्षित सीट होने के बावजूद आज मुनैज़ा हमारी नेता है।" यह कहना है ग्रामीण शांति देवी का। पंचायत सदस्य बनने के बाद मुनैज़ा के इस काम को और गति मिल गई है। उन्होंने अपने वार्ड में आंगनबाड़ी केन्द्र खुलवाने के लिए अपने वार्ड के 0 से 6 साल तक के बच्चों की सूची के साथ सीडीपीओ के पास आवेदन दिया है। मुनैज़ा का मानना है कि यदि सरकार की उपलब्ध सेवाएं सही तरीके से गांव में पहुंचें तो कई समस्याओं का समाधान हो सकता है। अगर छोटे बच्चे आंगनबाड़ी जाएंगे, तो उनका पेट भी भरेगा और दिमाग भी विकसित होगा। मुनैज़ा ने ठाना कि वह बीड़ी मजदूरों के हक के लिए अपनी आवाज उठाती रहेंगी।

मजदूरों के लिए खड़ी विंदा

बगहा-दो प्रखंड की ग्रामपंचायत राज विनवलीया बांतसर की पंचायत सदस्य विन्दा देवी अपने पंचायत के विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं। उनका मानना है कि जब तक गांव के सभी लोगों को रोजगार नहीं मिलेगा तब तक गांव में भूख और कुपोषण को रोकना मुश्किल है। विन्दा ने अपनी सोच को जमीन पर उतारने के लिए मनरेगा के काम पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इसी वर्ष फरवरी माह में विनवलीया बांतसर के वार्ड नं. 2 के ग्रामीणों ने काम का आवेदन दिया था जिसके एवज में गांव में मिट्टी भराई तथा ईट सोलिंग का कार्य हुआ। इस कार्य में 20 महिलाओं ने 39 दिन तक अपना योगदान देकर काम को पूरा किया लेकिन उनकी मजदूरी का भुगतान नहीं हुआ। इन महिलाओं ने इस बात की शिकायत विन्दा से की। विन्दा देवी ने इस बारे में रोजगार सेवक से जानकारी ली और मुखिया से बात की। संतोषजनक जवाब नहीं मिलने पर विन्दा ने महिलाओं को साथ लेकर मजदूरी के भुगतान के लिए बीडीओ के पास एक आवेदन दिया। विन्दा बताती है कि बीडीओ ने जल्द मजदूरी भुगतान का लिखित आदेश तो दे दिया, किन्तु इस पर कोई अमल नहीं हुआ। तब 31 अप्रैल 2013 को विन्दा के नेतृत्व में मनरेगा के मजदूरों ने प्रखंड बगहा-दो के बीडीओ का न सिर्फ घेराव किया बल्कि मनरेगा कार्यालय में तालाबंदी करने की बात करने लगे। मौके पर पहुंचे एसडीएम ने सभी मजदूरों और विन्दा को समझाते हुए जल्द भुगतान का वादा किए। 15 दिन के अंदर ही सभी के मजदूरी का भुगतान हुआ।

गौर कीजिए

विश्व में 38 ऐसे देश हैं जहां की संसद में महिलाओं की संख्या दस फीसद से कम है।

हमारी प्रतिनिधि

सिन्धु के हौसले ने भरी उड़ान, गांव का हुआ उत्थान

झाझा के करहरा पंचायत की पंचायत सदस्य सिन्धु सोरेन की जिन्दगी भी अन्य आदिवासी महिलाओं की ही तरह कठोर श्रम और संघर्ष से भरी है। अपना एवं अपने परिवार के भरण पोषण के लिए वह जंगल से लकड़ी और दतवन लाकर पास के बाजार में उसे बेचा करती है। करहरा पंचायत के इस वार्ड का पद अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित था। लोक मायम के सहयोग से सिन्धु ने अपना पर्चा भरा और निर्वाचित हुई। लेकिन जीतने के बाद उनकी जिम्मेदारी क्या होगी, क्या करना होगा, इस बात को जानने के लिए हमेशा तत्पर रहती।

महिला नेतृत्व कार्यशाला में भाग लेने के बाद सिन्धु के अंदर आत्मविश्वास जगा और उन्हें अपने पद का महत्व पता चला। अपनी राजनीतिक भूमिका की शुरूआत सबसे पहले सिन्धु ने वार्ड सभा लगा कर की। शुरू-शुरू में शर्म और झिझक के कारण सिन्धु लोगों के बीच बहुत कुछ कह नहीं पाई। लेकिन उन्हें यह बात समझ में आ गई कि बच्चों की शिक्षा पर कुछ काम करना जरूरी है। सिन्धु के वार्ड में कोई भी स्कूल नहीं था। वहां के बच्चों को पढ़ाई के लिए पहाड़ी पार कर दूसरे गांव में जाना पड़ता था, जिसकी दूरी बहुत अधिक थी। साथ ही दूसरे गांव के लोग अनुसूचित जनजाति के होने के कारण बच्चों के साथ भेदभाव भी करते थे। इन परिस्थितियों के कारण बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते थे। सिन्धु को इस बात से बहुत तकलीफ हुई कि उनके समुदाय की वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ बच्चे भी बहुत बड़ी संख्या में निरक्षर है। जिसके कारण इनके जीवन स्तर में भी सुधार नहीं हो पा रहा है। सिन्धु के वार्ड में आंगनबाड़ी केन्द्र भी नहीं था। सिन्धु के वार्ड के दोनों टोल डुम्बाडीह और आस्था में 92 बच्चे 0 से 6 साल तक के थे, लेकिन इनके लिए कोई केन्द्र नहीं था। इन सारी परिस्थितियों को समझते हुए सिन्धु ने सबसे पहले समुदाय के सहयोग और श्रमदान से एक घास फूस से प्राथमिक विद्यालय की नींव रखी, जिसमें गांव के पढ़े-लिखे युवकों ने बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। इसके साथ ही स्कूल के लिए बीडीओ और बीईओ के पास सारी समस्याओं के साथ आवेदन दिया। आंगनबाड़ी केन्द्र के लिए भी सीडीपीओ को बच्चों की सूची के साथ आवेदन सौंपा। अधिकारियों द्वारा सिन्धु की पहल की काफी प्रशंसा की गई। गांव वालों के सहयोग और सिन्धु की कोशिशों से वहां स्कूल स्वीकृत हुआ। समुदाय के सहयोग से शुरू किए गए स्कूल को सरकार द्वारा मान्यता दी गई। वर्तमान में इस स्कूल में गांव के सभी बच्चे पढ़ रहे हैं। यहां बच्चों की पोषाक, छात्रवृत्ति, मध्याह्न भोजन सहित निःशुल्क पुस्तक भी दिये जा रहे हैं। स्कूल के लिए पक्का भवन बनाने के आदेश की प्रक्रिया चल रही है। दूसरी तरफ वहां दो मिनी आंगनबाड़ी केंद्र बनाने का आदेश मिल चुका है जिसके लिए सेविका की बहाली सिन्धु की अध्यक्षता में हो चुकी है। सिन्धु अपने हौसले और अधिकारों के पंख से अपने वार्ड और समुदाय के विकास के लिए नित्य नई उड़ान भरने के लिए प्रयासरत हैं।

खुद को बदलकर पंचायत बदलने की कवायद

महादलित परिवार की बचिया देवी जगपुरा पंचायत की न सिर्फ उपमुखिया हैं बल्कि एक जुझारू महिला नेत्री के रूप में जानी जाती है। बचिया का पूरा परिवार दिहाड़ी मजदूरी पर आश्रित है। इसके बावजूद बचिया पंचायत के काम को प्राथमिकता देती हैं और प्रतिदिन पैदल चल कर 4 किलोमीटर दूर प्रखंड कार्यालय जाती हैं। जनप्रतिनिधि बनने से पहले और बाद भी बचिया की सबसे बड़ी चिन्ता अपने समुदाय द्वारा शराब बनाने एवं पीने की आदत को बदलना था। बचिया देवी कहती हैं कि हम भी चाहते हैं कि हमारा समाज बदले, सभी बच्चे स्कूल जाएं, महिलाएं शराब बनाना छोड़ खेतों में काम करें। लेकिन ऐसा कैसे होगा यह चिन्ता रहती है। बचिया ने बदलाव की शुरूआत पहले अपने घर से की। उन्होंने अपने छह बेटों को लगातार समझा-बुझा कर शराब बनाना छोड़ कर बटाई की खेती और खेतों पर मजदूरी करवानी शुरू की। साथ ही उन्होंने अपने टोले के कुछ बच्चों को स्कूल भेजा तथा स्कूल में जाकर शिक्षक से मिलकर बच्चों का नामांकन करवाया। गांव में उच्च वर्ग की आबादी अधिक होने के कारण मांझी परिवार के बच्चे स्कूल जाने से डरते थे। बचिया देवी ने इन सारी बातों से शिक्षक को अवगत कराया। शिक्षक का सहयोग और बचिया का प्रयास रंग लाया। सभी बच्चे नियमित रूप से स्कूल जाएं इस बात पर बचिया की नजर रहती है। शराब पीकर महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करने वाले लोगों के लिए बचिया देवी चुनौती हैं। गांव के ऐसे ही एक व्यक्ति को उन्होंने न सिर्फ सार्वजनिक रूप से डांट फटकार लगाई बल्कि जिस महिला के साथ बदतमीजी की गई थी, उससे माफी भी मंगवाई। बचिया देवी द्वारा किए जाने वाले प्रयासों से गांव वाले बहुत खुश हैं। निःसंदेह बचिया एक सशक्त नेत्री के रूप में अपनी पहचान बनाने में लगी हुई हैं।

गौर कीजिए

लैटिन अमेरिका के 8 और अफ्रीका के 11 देशों में संसद में महिलाओं की संख्या तीस फीसद से ज्यादा है।

हमारी प्रतिनिधि

बेटी को अपनाओ, समाज को बदलो : संजू देवी

मुठेर पंचायत की पंचायत सदस्य संजू देवी ने कई तरह की सामाजिक कुप्रथाओं को न सिर्फ झेला है बल्कि इसका मुंह तोड़ जवाब भी दिया है। शादी के 10 साल बाद भी जब संजू को कोई संतान नहीं हुई तो गुहापाकड़ गांव के लोग उन्हें बांझ कहते हुए कोसते थे। उनके पति पर दूसरी शादी का भी काफी सामजिक दबाव बनाया गया लेकिन संजू ने इन दकियानूसी सोच के आगे झुकने के बजाए इसका मुकाबला किया। उन्होंने अपने पति को राजी किया और एक बच्ची को गोद लिया। शुरू-शुरू में तो संजू के इस फैसले का गांव के लोगों ने बहुत विरोध किया। लेकिन संजू ने स्पष्ट किया कि उन्होंने न तो कोई जुर्म किया है और न ही कोई पाप। इसलिए अपना निर्णय वापस लेने की कोई गुंजाइश नहीं है। संजू की इसी सोच एवं साहस को देख कर गांव के लोगों ने उन्हें अपना नेता बनाना तय किया। वर्ष 2011 में संजू विधिवत निर्वाचित होकर वार्ड की नेता बन गई। सबसे पहले उन्होंने अपने वार्ड के वृद्ध, विधवा और निःशक्त लोगों को सामाजिक सुरक्षा पेंशन से जोड़ा। इनका विशेष ध्यान बच्चों की शिक्षा और स्वस्थ्य को बेहतर करने में रहता है। इसलिए उन्होंने अपने वार्ड के आंगनबाड़ी केन्द्र पर सभी बच्चों को भेजने का काम करती हैं। उन्हें पता चला कि प्राथमिक विद्यालय गुहापाकड़ में प्राानायापक और शिक्षक के आपसी मतभेद के कारण करीब छः माह से मयाह्न भोजन बंद है। संजू देवी को कार्यशाला में मयाह्न भोजन का निरीक्षण एवं विद्यालय शिक्षा समिति के विषय में पूरी जानकारी मिली थी। विद्यालय शिक्षा समिति के अयक्ष होने के नाते वह सीधे प्रधानायापिका के पास गई और मयाह्न भोजन न बनने का कारण जानना चाही। उन्होंने इस बात की शिकायत जिला शिक्षा पदाधिकारी से करने की बात कही। चूंकि प्रधानाध्यापिका स्कूल के आपसी झगड़े से निकल कर अपना ड्यूटी पूरा करना चाहती थी, सो वह भी संजू देवी के साथ जिला शिक्षा पदाधिकारी के पास जाने की बात कही। दोनों ने मिलकर जब जिला शिक्षा पदाधिकारी को सारी बात बताई तो उन्होंने भोजन बनवाने के संदर्भ में विभागिय पत्र स्कूल को प्रेषित किया। संजू के इस प्रयास से विद्यालय में मयाह्न भोजन नियमित रूप से चलने लगा है। भोजन की गुणवत्ता पर संजू देवी का पूरा यान रहता है। संजू देवी समाज में लड़का-लड़की के बीच भेदभाव को दूर करना चाहती है। इस लिए वह अपनी बेटी को अपना सबसे बड़ा धन मानती है। समाज के किसी भी विभेद वाले सवाल पर संजू साफ कहती हैं, "बेटियां किसी से कम नहीं होती है। बस इसे अवसर देने की जरूरत है। इसलिए तो मैं अपनी बेटी को शिक्षा सहित सभी अवसर देगें जिससे समाज में बदलाव आ सके।"

बरसाती ने अपने काम से बनाई खुद की पहचान

मुसहर परिवार की बरसाती देवी ने गजब का साहस और कुछ कर गुजरने की तमन्ना है। तभी तो बगहा 1 प्रखण्ड के पंचायत चखनी रजबटिया की वार्ड सदस्य होने के वावजूद उन्हें न तो किसी मीटिंग की सूचना दी जाती थी ना ही कोई महत्व दिया जाता था लेकिन बरसाती देवी इससे हार नहीं मानी बल्कि उन्होंने तय किया कि अपनी जानकारी और ज्ञान को इतना बढ़ा लेगी कि लोग खुद व खुद उन्हें महत्व देने लगेंगे। अपने धुन की पक्की बरसाती देवी ने सबसे पहले कार्यशाला में शामिल होना शुरू की। कार्यशाला में आने जाने से बरसाती देवी का ज्ञान और हौसला बढ़ा। जानकारी का उपयोग कर उन्होंने अपने वार्ड में 400फीट मिट्‌टी भराई तथा ईट सोलिंग करवाई। पेड़ के महत्व को अच्छी तरह समझती। बरसाती ने अपने वार्ड में मनरेगा के तहत 400 वृक्ष लगवाई। बरसाती अपने उत्साह और हिम्मत से वार्ड में कई योजनाओं को क्रियान्वयन करने में लगी हुई है। उन्होंने जहां 20 लड़कियों को कन्या विवाह योजना के अर्न्तगत लाभ दिलाई वहीं 18 बुढ़े व्यक्ति को वृद्धा पेंशन का लाभ दिलाने में सफल रही है। बरसाती का सपना है कि उनके वार्ड के बच्चे कुपोषण और बीमारी से मुक्त रहे और आगे बढ़े। इसके लिए उन्होंने अपने वार्ड के 0 से 6 वर्ष तक के बच्चों के सूची बनाई है साथ ही वार्ड के लोगों के साथ मिलकर आंगनवाड़ी केन्द्र खुलवाने का आवेदन सीडीपीओ. को सौपी है। उन्हें उस दिन का इंतेजार है जब वार्ड में एक आंगनवाड़ी केन्द्र होगा और सभी बच्चे स्वस्थ्य और कुपोषण से मुक्त होंगे।

दि हंगर प्रोजेक्ट के सौजन्य से

गौर कीजिए

जिन पंचायतों में महिलाएं प्रमुख रहीं वहां सामाजिक एवं बच्चों के लिए कार्य अधिक किये गये।

मुद्दा

जरूरत मौजूदा नीतियों को मांजने की

महिला आरक्षण बिल भारत के संवैधानिक इतिहास में सबसे लंबे समय तक लंबित रहने वाला बिल बन चुका है। महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले और उनके हित की बात चुनावी सभाओं में उठाने वाले राजनीतिक दलों के लिए भी अब ये विधेयक हर बार का शिगूफा बनकर रह गया है। हैरत इस बात की है कि जितने दल महिलाओं के लिए संसद में 33 प्रतिशत सीटों को आरक्षित करने का समर्थन करते हैं उससे कम ही दल इसका विरोध करते हैं फिर भी बिल हर बार अटक कर रह जाता है। कभी गठबंधन की मजबूरियां तो कभी विधेयक के मौजूदा स्वरूप को आधार बनाकर इसे पारित न होने देने की सभी कोशिशें की गई हैं।

संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को आरक्षण मिले या न मिले इनके पक्ष में कई तर्क दिये जाते रहे हैं। **नेटवर्क 18 समूह के मुख्य संपादक (डिजिटल और पब्लिसिंग) आर. जगन्नाथ फर्स्टपोस्ट डॉट कॉम** के लिए लिखे अपने लेख में बताते हैं कि केवल आरक्षण मिल जाने से महिलाओं का भला नहीं होने वाला है। इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में सरकार को सख्त फैसले लेने की जरूरत है जो महिलाओं के चौतरफा विकास की नींव को मजबूत बना सके। आरक्षण को सकारात्मक कार्रवाइयों से बदलने की जरूरत है जो कार्यक्षेत्र में विविधताओं को लाने में मददगार बन सके। श्री जगन्नाथ के मुताबिक, स्कूली शिक्षा को अनिवार्य और एकरूप बनाना होगा और इसके लिए शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई के महत्व को समझना होगा। इसी तरह कॉलेज के स्तर पर भी पसंद और आपूर्ति के सिद्धांत को लागू करना होगा ताकि बच्चों की रुचि की शिक्षा के लिए जरूरी संस्थानों को खोला जा सके। गरीब बच्चों के लिए शिक्षावृत्ति तथा अबाध्य ऋण की व्यवस्था करनी होगी।

हालांकि लेखक ये मानते हैं कि आरक्षण मिल जाने से लैंगिक भेदभाव के प्रति संवेदनशीलता बढ़ सकती है। वे कहते हैं कि एक राजनेता का काम समझदारी और न्याय से भरा होता है। आरक्षण के माध्यम से हम किसी कुशल सर्जन को सामने नहीं ला सकते हैं लेकिन औरतों को ज्यादा सशक्त तरीके से सामने लाने में तो सफल हो ही सकते हैं। श्री जगन्नाथ ने लिखा है कि आजादी के बाद निरक्षर मतदाताओं की बड़ी फौज सामने होने के बाद भी भारत ने मतदान का अधिकार देकर बड़ा चुनौतीपूर्ण कदम उठाया था। नब्बे के दशक में देश की पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण का अधिकार दिया गया था। इसी तरह अब समय है लोकसभा और विधानसभाओं में उन्हें विशेष तरजीह देकर इस क्रम को आगे बढ़ाने का। लेखक ने इस बिल को पास कराकर नयी नवेली मोदी सरकार के लिए भी खुद को साबित करने का एक अच्छा समय माना है। उन्होंने लिखा है कि यदि बहुमत वाली नरेंद्र मोदी की सरकार इस बिल को पास कर देती है तो वह कई आलोचक वामपंथी पार्टियों का मुंह बंद करा सकती है।

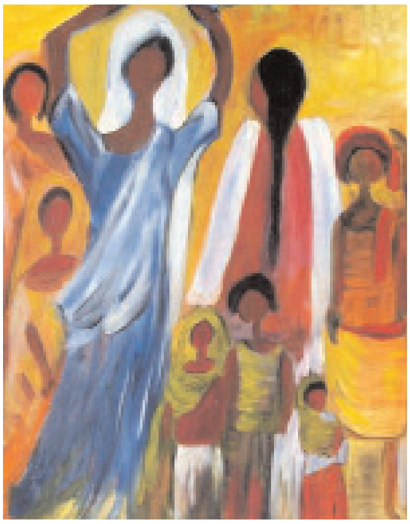

इस समय देश में अलग से किसी नीति को लाने की जरूरत उतनी नहीं है जितनी कि मौजूदा नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने की। साथ ही विधायिका के वर्तमान निकायों से लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने से ज्यादा बेहतर नतीजे पाये जा सकते हैं।

इस मुद्दे पर कल्पना शर्मा (स्तंभकार और द हिंदू की पूर्व डिप्टी संपादक) ने अपने लेख एक बिसरा हुआ विधेयक में लिखा है कि संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की दमदार उपस्थिति के लिए यह जरूरी है कि महिला आरक्षण विधेयक को कानून का रूप दिया जाये। वैसे अब इस विधेयक को 'एक बिसरा हुआ विधेयक' नाम देना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि यह बिल जिसे 108वां संविधान संशोधन बिल भी कहा जाता है, इतने लंबे समय तक हवा में रहा कि अब यह खुद हवा में विलीन होता दिख रहा है। हां, आधिकारिक रूप से यह अब भी मौजूद है।

राज्यसभा ने इसे 2010 में ही पास कर दिया था जिसके कारण यह रिकार्ड बुक में मौजूद है और अब इसे फिर नई सरकार की टेबुल पर विचार के लिए नहीं रखा जा सकता है। लेकिन इसके पहले कि यह कानून बने और विधानसभाओं और लोकसभा में महिलाओं के लिए 33 फीसद सीट आरक्षित हों, इस बिल को कई बाधाओं को पार करना होगा। इसे लोकसभा में पास होना होगा और कम से कम आधे राज्यों की विधानसभाओं को इसे मंजूरी प्रदान करनी होगी।

कल्पना लिखती हैं कि इस विधेयक का राज्यसभा तक का सफर भी कुछ कम नाटकीय नहीं था। सदन में 191 वोट इस विधेयक के पक्ष में पड़े थे और केवल एक वोट विरोध में था जो कि स्वतंत्र भारत पक्ष के शरद जोशी का था। अगले दिन के अखबारों के पहले पन्ने पर पूर्व राज्यसभा उप सभापति नजमा हेपतुल्ला भाजपा नेता सुषमा स्वराज और माकपा नेता बृंदा करात के एक साथ हाथ मिलाये और विजयी मुस्कान

गौर कीजिए

देश में महिलाओं को चुनाव में भाग लेने और चुनाव लड़ने का अधिकार 1950 में मिला।

मुद्दा

वाली तस्वीरें छायी रहीं। उनके मुताबिक, बड़ा सवाल ये है कि क्या महिलाओं के लिए आरक्षण सही है? नहीं। मौजूदा बिल को किसी भी सूरत में परफेक्ट नहीं कहा जा सकता। यहां तक कि जो लोग इसे पास कराने के लिए संसद में आगे बढ़े वे भी इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं दिखे। लेकिन उनका मानना है कि बिल को पास कराने से राजनीति में महिलाओं के पर्दापण को मजबूती मिलेगी। जो लोग इसका विरोध कर रहे हैं वे भी कुछ संशोधनों के साथ इसे मंजूर कर सकते हैं। जो भी हो इसके पास हो जाने से कुछ हद तक राजनीति में महिलाओं की भागीदारी जरूर बढ़ाई जा सकती है।

कुछ तर्क जो महिला आरक्षण बिल के विरोध में दिये जाते हैं उनमें से एक यह भी है कि वर्तमान में मौजूद महिला नेता कोई रोल मॉडल प्रस्तुत नहीं करती हैं। न ही अपने कामों से वे ये भरोसा दिला पाई हैं कि महिलाएं ज्यादा बेहतर सरकार दे सकती हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि ज्यादातर पुरुष नेता भी कोई आदर्श नहीं बना पाये हैं। तो क्या इसका मतलब ये है कि पुरुषों को नेतृत्व में भागीदार नहीं बनाना चाहिए? जब बात पुरुषों के नेतृत्व की होती है तो यह मान लिया जाता है कि वे शासन करने के लिए ही बने होते हैं। लेकिन महिलाओं को इसक लिए खुद को साबित करना होता है। उन्हें यह अधिकार कमाना पड़ता है, भले ही वे कम भ्रष्ट हों, या वे कम पक्षपात करती हों और चाहे वे पुरुषों की तुलना में कम धोखेबाज ही क्यों न हों।

इसी क्रम में **नितिन पई ने 'द एकॉर्न'** में अपने लेख में लिखा है कि देश में महिला आरक्षण को लागू करना कुछ मायनों में सही नहीं होगा। पहला कारण तो ये है कि किसी भी लोकतांत्रिक देश के सफल संचालन के लिए आरक्षण सही तरीका नहीं है। इतिहास गवाह रहा है कि जब भी किसी उद्देश्य के लिए आरक्षण नीति को लागू किया गया है तो उसे वापस लेना संभव नहीं हो पाया है, चाहे वह उद्देश्य पूरा ही क्यों न हो गया हो। इसके अलावा आरक्षण से बहुधा उन लोगों के लिए कोई प्रेरक मार्ग नहीं खुल पाया है, जिनके लिए वास्तव में यह नीति अपनाई गई हो। जिसके कारण उनके लिए मुख्य धारा में लौटना कम ही संभव हो पाता है। लेखक कहते हैं कि ये एक तरह का भ्रम समाज में फैला हुआ है कि महिला नेता ही महिलाओं के लिए बेहतर निवारक हो सकती हैं और ये भी कि निष्पक्ष चुनाव द्वारा मतदाता सबसे योग्य उम्मीदवार का चयन करते हैं।

दूसरा कारण श्री पई ने यह बताया है कि व्याहारिक दृष्टि से महिलाओं के लिए आरक्षण कोई खास असर नहीं छोड़ पाता है। जो महिलाएं संसद तक पहुंच पाती हैं उनके लिए तो यह सशक्तता का एक माध्यम है लेकिन जो नहीं पहुंच पाती हैं, और जो बहुमत में हैं, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। कुछ महिलाओं के ताकतवर हो जाने का मतलब महिला सशक्तिकरण से नहीं लगाया जा सकता है। ये एक बड़ा अंतर है। चेन्नई, दिल्ली, बिहार और उत्तर प्रदेश में महिलाएं मुख्यमंत्री रह चुकी हैं लेकिन वहां की महिलाएं उन राज्यों की महिलाओं की तुलना में ज्यादा सुरक्षित नहीं हैं जहां के मुख्यमंत्री पुरुष हैं।

नितिन पई ने लिखा है कि आरक्षण के लाभ से न केवल बहुमत वाली आम महिलाएं अछूती रह जाएंगी बल्कि संसद में मौजूद महिलाएं भी ताकतवर हो जाएंगी इसकी भी गारंटी नहीं है। अगर संसद अपने पुरुषों की डमी बनने वाली महिलाओं से भर जाये तो आरक्षण नीति की आत्मा ही मर जाएगी। इसके उलट डमी महिलाओं से अपना हित साधने वाले पुरुषों की पौ बारह हो जाएगी। दरअसल भारत में अलग से किसी नीति को लाने की जरूरत उतनी नहीं है जितनी कि मौजूदा नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने की। साथ ही विधायिका के वर्तमान निकायों से लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने से ज्यादा बेहतर नतीजे पाये जा सकते हैं।

गौर कीजिए

महिला कामगारों की 131 देशों की लिस्ट में भारत का स्थान नीचे से बीसवां है।

चुनौती

संख्या बढ़ी मगर साहस नहीं

रवांडा विश्व के सबसे गरीब देशों में से एक है। भूख, गरीबी और अशिक्षा के कारण लोग यहां अक्सर एक-दूसरे की जान के ही दुश्मन बन बैठते हैं। फिर भी एक मामले में यह देश दुनिया के तमाम धनी और शक्तिशाली देशों से कहीं आगे है। और वह है राजनीति में महिलाओं को भागीदार बनाने का। निर्णय लेने के स्तर पर महिलाओं को शामिल करने का। रवांडा के संसद लोअर चेम्बर में इस समय 56.3 फीसद महिलाओं का कब्जा है जो कि वहां लागू आरक्षण की नीति के कारण संभव हो पाया है। 2003, में युद्ध के बाद के दिनों में रवांडा ने अपनी संसद में महिलाओं के लिए तीस फीसद सीट आरक्षित करने का फैसला लिया। 2008 में इस देश की महिलाओं ने सारे रिकार्ड तोड़ दिये और देश ने विश्व में सर्वाधिक महिला सांसद होने का तमगा पाया। रवांडा एकमात्र ऐसा देश बन गया जहां की संसद में पुरुषों से ज्यादा महिलाएं मौजूद थीं। हालांकि इसके पीछे यहां की भौगोलिक दशा और युद्ध को बड़ा कारण माना जाता है। भीषण युद्ध जिसमें आठ लाख से ज्यादा लोग मारे गये, के बाद देश में महिलाओं का आंकड़ा सत्तर फीसद के करीब था। युद्ध के दौरान ज्यादातर पुरुष मारे गये थे और जो लापता थे उनके भी लौटने की संभावना बेहद क्षीण थी। ऐसे में यहां महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या बच गई और हाल के एक सर्वेक्षण के मुताबिक महिलाएं यहां की कुल आबादी का 53.5 फीसद हैं। ऐसे में सत्ता के पदों पर इनका कब्जा होना लाजिमी है।

रैंक	देश	निम्न सदन
1	रवांडा	56.3%
2	एंडोरा	50%
3	क्यूबा	48.9%
4	स्वीडन	44.7%
5	सेशेल्स	43.8%
6	सेनेगल	42.7%
7	फिनलैंड	42.5%
8	दक्षिण अफ्रीका	42.3%
9	निकारागुआ	40.2%
10	आइसलैंड	39.7%

विश्व की संसदों में महिलाओं की स्थिति पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा हाल ही में जारी अंतर संसदीय यूनियन की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि 189 देशों की सूची में भारत 11.4 प्रतिशत महिला सांसदों के साथ 111वें स्थान पर है। निस्संदेह रवांडा पहले नंबर पर है। रिपोर्ट ने कहा है कि पहले की तुलना में कहीं ज्यादा महिलाएं चुनकर संसदों में पहुंच रही हैं। यदि यही रफ्तार रही तो हम अगली पीढ़ी तक लैंगिक समानता के उद्देश्य को पाने में सफल हो सकते हैं। रिपोर्ट के मुताबिक वैश्विक स्तर पर महिलाओं की संसद में मौजूदगी में 1.5 फीसद की बढ़ोतरी हुई है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि संसदों में लागू किये जाने वाले आरक्षण का इस पर सकारात्मक असर पड़ा है। आरक्षण नीति को महत्वाकांक्षी, विस्तारित और प्रभावकारी होना चाहिए। रिपोर्ट के मुताबिक, लैटिन अमेरिका के देशों ने इस ओर अच्छी प्रगति की है जबकि अमेरिका 83वें नंबर पर और कनाडा 54वें नंबर पर रखा गया है। दक्षिण एशिया में सर्वाधिक महिला सांसदों का देश रहा नेपाल जहां की संसद में 30 फीसद संख्या महिलाओं की है। रिपोर्ट ने अफ्रीकी देशों की सराहना करते हुए कहा है कि लिस्ट में चार शीर्ष के देश अफ्रीकी महादेश से आते हैं।

ये ठीक है कि पूरी दुनिया में महिलाओं के प्रति सम्मान बढ़ा है और उन्हें राजनीति के साथ-साथ देश के उच्च पदों पर आसीन होने का मौका मिल रहा है लेकिन ध्यान देने वाली बात ये है कि निर्णायक स्थान पर होने के बाद भी महिलाएं पूरे देश की महिलाओं के लिए कोई उल्लेखनीय काम नहीं कर पाई हैं। इसका उदाहरण हम उन तमाम देशों से ले सकते हैं जहां कभी न कभी महिलाएं निर्णायक रही हैं। रवांडा की संसद में महिलाएं बहुमत में हैं लेकिन वहां महिलाओं के लिए कुछ खास कर पाने में वे असमर्थ रही हैं। 2007 में प्रकाशित ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की एक रिपोर्ट में इस ओर ध्यान दिलाया गया है। इसमें कहा गया है कि पिछले सात वर्षों में रवांडा में महिला सशक्तिकरण के लिए केवल एक ही कानून को पारित कराया जा सका है। बलात्कार, प्रताड़ना, माताओं के अधिकार और महिला आरक्षण के मुद्दे पर कुछ नहीं किया जा सका। यह रिपोर्ट बताती है कि केवल उच्च पद पर होना ही महिलाओं के लिए काफी नहीं है बल्कि उन्हें अपने अधिकारों को छीनने के लिए तैयार होना होगा।

यही हाल पाकिस्तान में भी देखा जा सकता है जहां की प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो भी महिलाओं के लिए कोई करिश्मा नहीं कर पाईं। यहां तक कि विवादित और शर्मनाक हुदूद कानून, जिसके तहत रेप की शिकार महिला को अपने ऊपर हुए अत्याचार को साबित करने के लिए चार पुरुष गवाहों को सामने लाना होगा, वरना महिला की पत्थर से कूच कर हत्या कर दी जाएगी, को भी हटवा पाने में प्रधानमंत्री बेनजीर कामयाब नहीं हो पाईं। इसी तरह भारत में इंदिरा गांधी और बांग्लादेश में शेख हसीना व खालिदा जिया के खाते में भी महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर काम करने की उपलब्धि कम ही है। इंदिरा गांधी देश के सबसे सशक्त प्रधामंत्रियों में शुमार की जाती हैं। एक महिला प्रधानमंत्री होने के नाते वे देश की महिलाओं के लिए कई तरह के कानून पारित करवा सकती थीं लेकिन ऐसा करने में वे कामयाब नहीं हो पाईं। ठीक इसी तरह पिछली संप्रग सरकार की मुखिया होने के बाद भी सोनिया गांधी आरक्षण बिल को पारित करा पाने में विफल रहीं।

गौर कीजिए

वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम के मुताबिक भारत में महिला कामगारों का प्रतिशत 24 है।

बेमिसाल

नरेंद्र मोदी की कैबिनेट के शानदार 7

नरेंद्र मोदी ने तीस साल बाद गठबंधन से इतर खालिस भाजपा की सरकार बनाई, यह एक उपलब्धि है। नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री पद के शपथ ग्रहण समारोह में 4000 लोग उपस्थित हुए, यह अभूतपूर्व है। लेकिन नरेंद्र मोदी की कैबिनेट में सात महिला मंत्री हैं जिनमें से छह केंद्रीय कैबिनेट में हैं, शानदार है। देश में अब तक की किसी भी सरकार ने अपनी कैबिनेट में इतनी महिलाओं को जगह नहीं दी। और महिलाएं भी कैसी ! बुजुर्ग और अनुभवी के साथ-साथ युवा और फ्रेशर तक।

सुषमा स्वराज

62 साल की सुषमा स्वराज दिल्ली की पहली महिला मुख्यमंत्री होने के साथ-साथ सोनिया गांधी को बेलारी में कांटे की टक्कर देने के लिए मशहूर हैं। अंबाला कैंट में जन्मी सुषमा के पिता आरएसएस के प्रभावशाली नेता थे। संस्कृत और राजनीति शास्त्र में ग्रेजुएट सुषमा ने एलएलबी भी पास किया है। सुषमा के राजनीतिक करियर में कई उपलब्धियां ऐसी हैं जो देश में पहली पहली बार हुआ। 1973 से वे सुप्रीम कोर्ट में वकील रहीं जबकि 1977 में उन्हें देश की सबसे कम उम्र की (25 वर्ष) केंद्रीय मंत्री होने का गौरव प्राप्त हुआ। दो साल बाद वे जनता पार्टी की हरियाणा में प्रदेश अध्यक्ष बनाई गईं। किसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल की वे पहली महिला प्रवक्ता भी बनीं। इसी तरह भारतीय जनता पार्टी की पहली महिला मुख्यमंत्री, पहली केन्द्रीय मंत्री, महासचिव, प्रवक्ता और पहली महिला विपक्ष की नेता बनने का श्रेय भी सुषमा के खाते में आया। वे सात बार संसद की सदस्य रह चुकी हैं जबकि तीन बार राज्य विधानसभा की। 9014 में उन्होंने विदिशा से चुनाव जीता और अपने प्रतिद्वंद्वी को रिकार्ड चार लाख मतों के अंतर से हराया।

स्मृति ईरानी

मोदी सरकार में सबसे कम उम्र की केंद्रीय महिला मंत्री 38 साल की स्मृति ईरानी अपने अभिनय कौशल के लिए भी खूब पहचानी जाती हैं। इतने कम समय में ही स्मृति ने कड़ा संघर्ष किया और आज बुलंदी पर हैं। दिल्ली में पंजाबी-बंगाली परिवार में जन्मी स्मृति की शादी 2001 में जुबिन ईरानी के साथ हुई। टीवी की सबसे मशहूर कलाकार बनने के पहले स्मृति ने अपने जीवन का बुरा दौर भी देखा है। वे मैक डोनॉल्ड रेस्तरां में वेटरेस और सफाई कर्मचारी का काम कर अपने परिवार का खर्च चलाती थीं। 1998 में उन्होंने फेमिना मिस इंडिया प्रतियोगिता में हिस्सा लिया और फाइनल में अपनी जगह बनाई। वर्ष 2000 में उन्होंने टीवी धारावाहिक 'आतिश' और 'हम हैं कल आज और कल' में काम किया लेकिन उनकी पहचान मेगा सीरियल 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' से बनी। इसके लिए उन्होंने सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का भारतीय टेलीविजन अकादमी अवार्ड लगातार पांच बार जीता। वर्ष 2003 में स्मृति भारतीय जनता पार्टी से जुड़ीं और 2004 में चांदनी चौक से कपिल सिब्बल के खिलाफ लोकसभा का चुनाव भी लडीं लेकिन हार गईं। हालांकि उनका राजनीतिक सफर नहीं रुका और 2011 में उन्हें गुजरात से राज्यसभा के लिए भेजा गया। 2014 के आम चुनाव में उन्होंने अमेठी में राहुल गांधी को कड़ी चुनौती दी लेकिन जीत नहीं पाई। तो भी नरेंद्र मोदी की सरकार में उन्हें कैबिनेट मंत्री का पद दिया गया।

निर्मला सीतारमण

अपनी मृदु वाणी के लिए जानी जाने वाली 54 वर्षीया निर्मला सीतारमण 2010 से ही भाजपा की आधिकारिक प्रवक्ता रही हैं। तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में उनका जन्म हुआ और दक्षिण राज्यों से वे अकेली महिला केंद्रीय मंत्री हैं। निर्मला ने अंतरराष्ट्रीय अध्ययन में एम.फिल किया है। राजनीति में आने से पहले वे बीबीसी में उच्च पद पर कार्य कर चुकी हैं। 2003 में वे राष्ट्रीय महिला आयोग के लिए चुनी गईं। संसद में महिलाओं के आरक्षण मामले में भारतीय जनता पार्टी के रुख को देखने के बाद निर्मला सुषमा स्वराज के संपर्क में आईं और फिर भाजपा से जुड़ गईं। हालांकि उनका परिवार अरसे से कांग्रेस पार्टी से जुड़ा है। निर्मला की शादी राजनीतिक विश्लेषक और टेलीविजन प्रस्तोता डा. परकाला प्रभाकर से हुई।

गौर कीजिए

53 फीसद महिला नेताओं को घरेलू काम न कर पाने पर प्रताड़ित किया जाता है।

बेमिसाल

उमा भारती

भाजपा की फायरब्रांड नेता और मध्य प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री उमा भारती का विवादों से गहरा नाता रहा है। 1959 में टीकमगढ़ में जन्मी उमा भारती रामजन्मभूमि आंदोलन में अपनी सक्रियता के कारण चर्चा में आईं। यूं तो उमा ने केवल छठी कक्षा तक ही पढ़ाई की है लेकिन धर्म-आध्यात्म में रुचि के कारण वे बाल्यकाल से ही धर्मोपदेश दिया करती थीं। छोटी उम्र में धार्मिक प्रवचन देने के दौरान ही वे राजमाता विजयाराजे सिंधिया के संपर्क में आईं जो बाद में उनकी राजनीतिक गुरु भी बनीं। 1984 में मात्र 25 साल की उम्र में उमा ने अपना पहला आम चुनाव लड़ा लेकिन इंदिरा गांधी हत्याकांड की लहर के कारण हार गईं। 1989 में खजुराहो से वे संसद पहुंचीं और लगातार तीन सत्रों में सदस्य बनी रहीं। 1999 में उन्होंने भोपाल को अपना राजनीतिक केंद्र बनाया और इस दौरान केंद्र में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में कैबिनेट और राज्य मंत्री भी रहीं। उन्होंने अब तक केंद्रीय मानव संसाधन, युवा एवं खेल मामले, पर्यटन और कोयला एवं खनन मंत्री का दायित्व संभाला है। 2003 के विधानसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की अगुवाई करते हुए उन्होंने राज्य की तीन-चौथाई सीटों पर कब्जा किया और फिर वहां की मुख्यमंत्री भी बनीं। 2004 में उन्होंने इस्तीफा दे दिया और भाजपा को छोड़कर संघ की विचारधारा पर आधारित भारतीय जनशक्ति पार्टी की स्थापना की लेकिन 2011 में वे पुनः भाजपा में लौट आईं और उपाध्यक्ष बनाई गईं। 2014 के आम चुनाव में उन्होंने झांसी से विजयश्री प्राप्त की। गंगा नदी को बचाने के राष्ट्रव्यापी अभियान को लेकर वे आजकल चर्चा में हैं।

हरसिमरत कौर

यूं तो राजनीति में हरसिमरत कौर का प्रवेश 2009 के आम चुनाव में हुआ था लेकिन इस क्षेत्र से उनका परिचय 1991 में ही हो गया था जब उनकी शादी मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल के पुत्र सुखबीर सिंह बादल के साथ हुई। मैट्रिक पास हरसिमरत ने टेक्सटाइल में डिप्लोमा की डिग्री ली है। 2014 के आम चुनाव में शिरोमणि अकाली दल के टिकट पर भटिंडा से उन्होंने संसद में जगह बनाई।

नजमा हेपतुल्ला

74 साल की नजमा हेपतुल्ला नरेंद्र मोदी की कैबिनेट में एकमात्र मुस्लिम महिला हैं। राज्यसभा की उप सभापति रह चुकीं हेपतुल्ला स्वतंत्रता की लड़ाई के नायक मौलाना अबुल कलाम आजाद और ख्यातिप्राप्त अभिनेता आमिर खान के परिवार से ताल्लुक रखती हैं। वे विज्ञान और समाज से जुड़े मुद्दों की कई किताबों की लेखिका रह चुकी हैं और उनका संयुक्त राष्ट्र से जुड़ी संस्थाओं से भी खासा जुड़ाव रहा है। वे यूएन के विकास कार्यक्रमों में मानव विकास राजदूत के रूप में काम कर चुकी हैं और 1997 में महिलाओं की स्थिति पर बने कमीशन की अगुवाई भी का चुकी हैं। जूलॉजी और कार्डियक एनाटोमी में उच्च शिक्षा प्राप्त नजमा हेपतुल्ला 1986 से लेकर 2012 तक पांच बार राज्यसभा की सदस्य रह चुकी हैं। उनका राजनीतिक करियर कांग्रेस पार्टी से शुरू होकर ऊंचाई तक पहुंचा लेकिन 2004 में सोनिया गांधी से मतभेद के बाद उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और भारतीय जनता पार्टी से जुड़ गईं। 2007 में भाजपा नीत राजग सरकार ने नजमा का नाम उप राष्ट्रपति पद के लिए सामने रखा लेकिन वे जीत नहीं पाईं।

मेनका गांधी

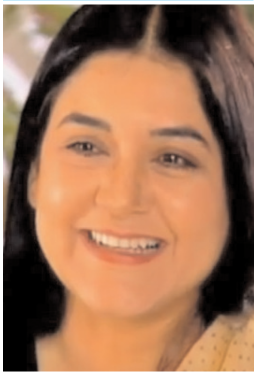

जानवरों से अपने लगाव के लिए मशहूर भाजपा की मेनका गांधी देश की प्रतिष्ठित नेहरू-गांधी परिवार से ताल्लुक रखती हैं लेकिन उनका कांग्रेस पार्टी से कोई वास्ता नहीं है। पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की छोटी बहू और दिवंगत संजय गांधी की पत्नी मेनका अपने पुत्र वरुण गांधी के साथ भारतीय जनता पार्टी के जरिये राजनीति में सक्रिय हैं। मेनका का जन्म 1956 में दिल्ली के एक पंजाबी परिवार में हुआ था। महज 18 वर्ष की उम्र में उनकी शादी गांधी परिवार के छोटे बेटे से हो गई थी। 23 साल की उम्र में ही अपने पति को एक विमान हादसे में खो देने के तीन साल बाद मेनका ने अपनी पार्टी राष्ट्रीय संजय मंच का गठन किया जिसका मकसद युवा शक्ति को संगठित करना था। पार्टी ने आंध्र प्रदेश विधानसभा चुनाव में 4-5 सीटें भी जीती थीं। 1984 में उन्होंने निर्दलीय प्रत्याशी के तौर पर अमेठी से राजीव गांधी के खिलाफ चुनाव लड़ा लेकिन उसी वर्ष हुई इंदिरा गांधी की हत्या से आहत देश की सहानुभूति राजीव के साथ रही और वे न केवल चुनाव जीते बल्कि प्रधानमंत्री भी बने। 1988 में मेनका ने अपनी पार्टी का विलय जनता दल में कर दिया और महासचिव बन गईं। महज 33 साल की उम्र में वे देश की वन एवं पर्यावरण मंत्री बनीं। इसके बाद के चुनावों में पीलीभीत से वे चुनी जाती रहीं।

गौर कीजिए

2001 की गणना के मुताबिक सरकारी नौकरियों में केवल 10 फीसद महिलाएं हैं।

तस्वीर के दो पहलू

सहयोगी भी, विरोधी भी बने पुरुष

जब महिलाएं चुनाव मैदान में उतरती हैं तो खबर बनती है, और जब फिल्म अभिनेत्रियां मैदान-ए-जंग में आ जाती हैं तो ब्रेकिंग न्यूज बन जाती है। हमारे देश में फिल्म तारिकाओं का जो क्रेज है उससे कोई भी अछूता नहीं है। ऐसे में जब वे चुनाव के दौरान लोगों से रू-ब-रू होने के लिए आगे आती हैं तो कई बार उनका सामना अप्रिय लोगों और घटनाओं से भी हो जाता है। इस वर्ष देश ने सोलहवीं लोकसभा के लिए आम चुनाव में हिस्सा लिया। इस दौरान कई खबरें ऐसी बनीं जिन्होंने महिलाओं के राजनीति में उतरने के मुद्दे पर एक बार फिर सवाल पैदा कर दिया।

मेरठ में कांग्रेस प्रत्याशी नगमा को चुनाव प्रचार के दौरान बेहद ओछी हरकत का सामना करना पड़ा और वह भी अपने ही दल के एक नेता द्वारा। अपने ही बीच के लोगों की शर्मनाक हरकत के कारण अब नगमा ने सतर्क रहने की नीति अपनाई है। अपने हौसले का परिचय देते हुए उन्होंने चुनाव से कदम नहीं खींचे बल्कि प्रचार के दौरान लोगों से दूरी रखने का फैसला लिया। घटना के बाद नगमा ने कहा कि एक महिला किसी भी समय ऐसी स्थिति का शिकार बन सकती है इसलिए सचेत उन्हें ही होना होगा और अपनी सुरक्षा के उपाय खुद करने होंगे।

कुछ वर्ष पहले भी समाजसेवी से राजनीतिज्ञ बनी एक महिला उम्मीदवार को ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा था। दिल्ली के कम शिक्षित इलाके में प्रचार करते समय कुछ पुरुषों ने बुर्का पहनकर उन्हें छुआ और गले मिले। उस समय उक्त महिला को इसका आभास भी हुआ लेकिन उन्होंने सोचा कि हो सकता है ये लोग समलैंगिक हों। बाद में पता चला कि वे लोग गलत मंशा पाले हुए युवक थे। इस घटना के बाद उक्त महिला ने भी महिलाओं से गले मिलना बंद कर दिया और केवल हाथ मिलाने लगीं। भीड़-भाड़ में होने वाली ऐसी घटनाओं से बचने के लिए अभिनेत्रियां अब अपने साथ मार्शल भी ले जाने लगी हैं। मथुरा से भाजपा सांसद हेमा मालिनी साफ तौर पर कहती हैं कि वे अपनी कार से ही लोगों का अभिवादन करती हैं और उनके साथ सुरक्षा जवान भी तैनात रहते हैं। वे कहती हैं कि लोग उत्साहित हो जाते हैं लेकिन हमें दूरी रखनी पड़ती है। वे कहती हैं "मैं नेता होने के पहले एक महिला हूं।" भाजपा की चंडीगढ़ से सांसद किरण खेर मानती हैं कि चुनावों के दौरान लोग आपसे बहुत अपेक्षा करने लगते हैं। वे चाहते हैं कि आप उनके बीच जाएं लेकिन महिलाओं को अपने रवैये से ये जता देना होगा कि वे अपने साथ कोई भद्दापन बर्दाश्त नहीं करेंगी। चंडीगढ़ से ही आम आदमी पार्टी की उम्मीदवार रहीं गुल पनाग ने बताया कि वैसे तो उन्हें किसी तरह की बदतमीजी का शिकार नहीं होना पड़ा लेकिन वे मानती हैं कि महिलाओं को हर जगह सतर्क रहने की जरूरत है। गुल के मुताबिक ये किसी अभिनेत्री की ही बात नहीं है बल्कि हर आम और खास महिला को अपनी सुरक्षा की चिंता खुद ही करनी पड़ती है।

हाई प्रोफाइल महिलाओं को जब इस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है तो आम महिलाओं का क्या होगा इसके बारे में सोचा जा सकता है। हालांकि तस्वीर का दूसरा रुख भी है। हमारे ही देश में कई ऐसे लोग हैं जो राजनीति में महिलाओं के उतरने पर उन्हें प्रोत्साहन के साथ-साथ अपना समय और सलाह भी देते हैं। इसी लोकसभा चुनाव में हमने कई ऐसी महिला उम्मीदवारों को देखा जिनके पतियों ने उनके रास्ते में आने वाली हर बाधा को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री दंपति लालू प्रसाद और राबड़ी देवी की सबसे बड़ी बेटी मीसा भारती ने 2014 के आम चुनाव से राजनीति में कदम रखा था। हालांकि लोकसभा के लिए पाटलीपुत्र सीट से राष्ट्रीय जनता दल की प्रत्याशी मीसा को कामयाबी नहीं मिल पाई लेकिन इस दौरान उनके पति शैलेश कुमार ने अपनी बदली भूमिका को बखूबी निभाया। देश के प्रतिष्ठित आईआईएम लखनऊ से पढ़े और इंफोसिस में काम कर चुके शैलेश ने पत्नी के चुनाव अभियानों को मैनेज करने के साथ-साथ दोनों बेटियों का जिम्मा भी अपने हाथ ले लिया। बकौल शैलेश मैं बेटियों की जिम्मेदारी के साथ-साथ मीसा के अभियानों को लेकर बेहद व्यस्त रहा। हालांकि उन्होंने माना कि रात में बेटियों को सुलाना काफी मुश्किल होता है क्योंकि मीसा अक्सर देर रात ही लौट पाती हैं। शैलेश जहां कई चुनावी रैलियों में मीसा के साथ खड़े होते हैं तो कई जगहों पर पर्दे के पीछे से उनकी मदद भी करते हैं। वे बताते हैं "मीसा लोगों से मिलती हैं और उनकी समस्याओं को जानती हैं लेकिन मैं आंकड़े इकट्ठे करता हूं। मेरे पास प्रशिक्षित लोगों की एक टीम भी है जो आधुनिक तकनीकी का इस्तेमाल कर ज्यादा से ज्यादा मतदाताओं से जल्दी जुड़ने में मीसा की मदद करता है।"

सुपौल लोकसभा सीट से कांग्रेस प्रत्याशी रंजीता रंजन के साथ स्थितियां थोड़ी भिन्न हैं। रंजीता के पति राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव दूसरी राजनीतिक पार्टी राजद से मधेपुरा से प्रत्याशी रहे हैं। एक ही समय में पति-पत्नी दोनों अपने-अपने चुनावी अभियानों में

गौर कीजिए

उच्च पदस्थ महिला कामगारों की संख्या देश में महज पांच फीसद है।

तस्वीर के दो पहलू

व्यस्त रहें तो परिवार और बच्चों को संभाल पाना बेहद मुश्किल होता है। ऐसे में पप्पू कहते हैं "हम दो अलग-अलग जगहों से दो भिन्न राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। लेकिन हम एक-दूसरे के चुनाव अभियानों में मिलकर हिस्सा लेते हैं। मैं रंजीता की चुनावी रैली में उसके साथ होता हूं तो रंजीता मेरी चुनावी रैली में मेरे साथ होती है।" पप्पू यादव पूर्णिया के माकपा नेता अजीत सरकार की हत्या के मामले में चार साल तक जेल में रह चुके हैं। इस साल मई में उन्हें रिहा कर दिया गया। पप्पू यादव मानते हैं कि दोनों के चुनाव में व्यस्त रहने का असर उनके परिवार और बच्चों पर पड़ता है। वे कहते हैं "हमें पारिवारिक मामलों पर बात करने का वक्त ही नहीं मिलता। हमारे बच्चे दिल्ली में हैं और अपनी मां को याद करते हैं लेकिन रंजीता की अपने क्षेत्र के लोगों के लिए भी जिम्मेदारी है जिसे पूरा करना होता है।"

इसी तरह भागलपुर से भाकपा माले प्रत्याशी रिंकी कुमारी के पति रिंकू हर कदम पर उनके साथ होते हैं। रिंकू कहते हैं कि दोनों में से जिसके पास समय होता है वो घर के कामकाज को देख लेता है।

मुंगेर से लोक जनशक्ति पार्टी प्रत्याशी वीणा देवी को अपने पति सूरजभान सिंह का मजबूत साथ मिला हुआ है। एक हत्याकांड में नाम आने के कारण चुनाव लड़ने से अयोग्य ठहरा दिये गये सूरजभान अपनी पत्नी के चुनाव अभियानों में हमेशा साथ होते हैं।

भाकपा माले की नालंदा सीट से प्रत्याशी शशि यादव को भी अपने पति बीरेंद्र झा का पूरा सहयोग मिला हुआ है। झा बताते हैं कि उनकी पत्नी चुनाव लड़ने के प्रति इच्छुक नहीं थी लेकिन उन्होंने शशि को इसके लिए प्रेरित किया। हालांकि वे अपनी पत्नी के चुनावी अभियानों में उनके साथ नहीं रह पाते क्योंकि इस दौरान उन्हें दरभंगा और मधुबनी में पार्टी से जुड़ी गतिविधियों को देखना होता है।

गौर कीजिए

पूरे विश्व में ऊंचे पदों पर केवल बीस फीसद महिलाएं काबिज हैं।

चेंजमेकर्स

जिन्होंने मोड़ दी जीवन की दिशा

राजकुमारी अमृत कौर

भले ही आज के राजनीतिक दलों को महिलाओं की काबिलियत समझने में देर लग रही हो लेकिन ये जानना दिलचस्प होगा कि स्वतंत्र भारत की सबसे पहली कैबिनेट में भी महिला मंत्री की मौजूदगी थी। आजादी के बाद प्रधानमंत्री बने जवाहरलाल नेहरू की पहली कैबिनेट में राजकुमारी अमृत कौर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री थीं और इस तरह वे देश की पहली महिला कैबिनेट मंत्री बनीं। 1957 तक केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री के पद पर रहते हुए राजकुमारी कौर ने राजधानी दिल्ली में ऑल इंडिया इंस्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज की आधारशिला रखी जो आज भी देश के अग्रणी मेडिकल कॉलेज और अस्पतालों में से एक है। राजकुमारी अमृत कौर का जन्म 2 फरवरी 1889 में कपूरथला के राजघराने में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा ब्रिटेन में हुई थी।

कमला नेहरू

देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की पत्नी होने के अलावा कमला नेहरू की पहचान आजादी की लड़ाई के दौरान उनके कामों से भी है। 1899 में दिल्ली के एक पारंपरिक परिवार में जन्मीं कमला ने जब नेहरू परिवार में कदम रखा तो खुद की पहचान को खोने नहीं दिया और देश के लिए अपने जज्बे को बरकरार रखा। बाद में वे आजादी की जंग में महिलाओं को शामिल कराने के अभियान में लगी रहीं और नेहरू परिवार को भी बेहद संजीदगी से जोड़े रखने में कामयाब रहीं। उन्होंने एक साथ दो मोर्चों पर सफलता से काम किया। जहां वे अंग्रेजी सरकार से संबंधों को कायम रख पाईं तो वहीं भारतीयों के खिलाफ उनकी नीतियों का भी लगातार विरोध करती रहीं। उनकी मृत्यु 1936 में हो गई।

अरुणा आसफ अली

अरुणा आसफ अली आजादी की जंग की नायिका थीं। उनका अभ्युदय भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुआ जब उन्होंने गोवालिया टैंक मैदान में भारत का झंडा फहराया। ऐसा कर वे हजारों भारतीय युवाओं की नायिका बन गईं। इस आंदोलन के दौरान जब प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया जा रहा था तब अरुणा ने आंदोलन की बागडोर थामी और भूमिगत रहकर अपने काम को अंजाम दिया। इस दौरान उनकी सारी संपत्ति सीज कर ली गई और ब्रिटिश सरकार ने उनपर पांच हजार रुपये का इनाम घोषित कर दिया। आजादी के बाद वे दिल्ली की मेयर बनाई गईं जबकि 1975 में उन्हें लेनिन शांति अवार्ड से भी नवाजा गया। 1991 में जवाहरलाल नेहरू अवार्ड जबकि 1998 में देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

एनी बेसेंट

एनी बेसेंट को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली गैर भारतीय महिला अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त है। थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष, होमरूल लीग की संस्थापक, महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने वाली महिला होने के साथ-साथ वे एक सफल लेखिका और कवयित्री भी थीं। वे मूल रूप वे आयरिश थीं लेकिन भारत को उन्होंने अपना दूसरा घर मान लिया था। 1917 में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया था। उन्होंने एक समाचार पत्र न्यू इंडिया भी शुरू किया था जो ब्रिटिश सरकार की नीतियों का खुलकर विरोध करता था। बाद में गांधी जी के स्वतंत्रता की लड़ाई में सक्रिय होने के बाद उनकी गांधी जी से मतभेद हो गई और वे धीरे-धीरे राजनीति से दूर होती चली गईं।

सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष थीं। उनका जन्म 1879 में हुआ था जबकि उनकी मृत्यु मार्च, 1949 में हो गई। उन्हें देश की पहली महिला राज्यपाल होने का भी गौरव प्राप्त है। आजादी के बाद उन्हें उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बनाया गया था। वे न केवल आजादी के संग्राम में सक्रिय थीं बल्कि लेखनी पर भी उनका पूरा अधिकार था। वे एक बेहतरीन कवयित्री और कथा वाचक थीं। अपनी इन्हीं खूबियों के कारण उन्हें 'भारत कोकिला' के उपनाम से भी नवाजा गया। 1905 में बंगाल विभाजन के दौरान वे स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हुईं और गोपाल कृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गांधी जैसे लोगों के साथ मिलकर काम किया।

गौर कीजिए

देश में 48 फीसद महिलाएं अपने करियर के मध्य तक पहुंचने से पहले ही नौकरी छोड़ देती हैं।

चेंजमेकर्स

कस्तूरबा गांधी

कस्तूरबा गांधी को भारतीय 'बा' के नाम से भी जानते हैं। गांधी जी की पत्नी होने के नाते जो सम्मान उन्हें देश और विदेश में मिला उतना ही सम्मान अपने देश के लिए लगाव और समर्पण के लिए मिला। 1869 में पोरबंदर के एक धनी कारोबारी गोकुलदास मखारजी के यहां जन्मीं कस्तूरबा ने जन्म से ही सभी सुखों को भोगा था। लेकिन जब उनकी शादी मोहनदास करमचंद गांधी से हुई तो उन्होंने सादगी का जीवन अपना लिया और भारतीय महिलाओं के लिए एक मिसाल बन गईं। कस्तूरबा अनपढ़ थीं लेकिन गांधी जी उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया। उनका निधन 1944 में हो गया।

मैडम कामा

भीकाजी रुस्तम कामा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक मजबूत इकाई थीं। 1861 में मुंबई के प्रतिष्ठित पारसी परिवार में जन्मीं कामा ने देश में महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव को लेकर जबर्दस्त अभियान चलाया। उनके पिता सोराबजी फ्रेमजी पटेल पारसी समुदाय के एक ताकतवर व्यक्ति थे और समुदाय में उन्हें विशेष स्थान प्राप्त था। देश की आजादी के प्रति उनकी दीवानगी इसी से देखी जा सकती है कि 1907 में जर्मनी के स्टगार्ट में इन्टरनेशनल सोशलिस्ट कांफ्रेंस के दौरान उन्होंने भारतीय झंडा फहराया था। देश की कई शहरों में सड़कों व स्थानों के नाम मैडम कामा के नाम पर रखे गये हैं। इंडियन कोस्ट गार्ड में एक जहाज भी उनके नाम पर रखा गया है।

सुचेता कृपलानी

सुचेता कृपलानी देश की पहली महिला मुख्यमंत्री के रूप में जानी जाती हैं। उनका जन्म 1908 में हुआ था जबकि आजादी की जंग में उनका पर्दापण भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुआ था। उन्होंने आजादी के दौरान देश विभाजन के समय गांधी जी के साथ मिलकर काम किया था और नोआखली में भी उनके साथ थीं। वे उन कुछ महिलाओं में शामिल थीं जिन्हें संविधान सभा के लिए चुना गया था। भारत के संविधान के चार्ट निर्माण के लिए गठित समिति में भी वे शामिल थीं। आजादी के दिन यानी 15 अगस्त 1947 को उन्होंने संविधान सभा में वंदे मातरम गाना गाया था।

विजयालक्ष्मी पंडित

पंडित जवाहरलाल नेहरू की बहन होने से ज्यादा विजयालक्ष्मी पंडित का नाम संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली महिला अध्यक्ष होने के लिए जाना जाता है। वर्ष 1900 में जन्मीं विजयालक्ष्मी एक सफल कूटनीतिज्ञ थीं। आजादी के बाद उन्होंने कई देशों में भारत के राजदूत के रूप में काम किया जिनमें सोवियत यूनियन, आयरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका और मेक्सिको शामिल रहे। 1962 से 1964 के बीच वे महाराष्ट्र की राज्यपाल भी रहीं। इसके बाद वे फूलपुर से लोकसभा सांसद चुनी गईं। यह क्षेत्र पहले उनके भाई जवाहरलाल का संसदीय क्षेत्र रह चुका था। 1968 तक विजयालक्ष्मी ने सफलतापूर्वक सांसद का पद संभाला।

मृदुला साराभाई

मृदुला साराभाई का नाम भी उन अनगिनत महिला सेनानियों में आता हैं जिन्होंने भारत को आजाद कराने के लिए अपना जीवन होम कर दिया था। मृदुला दस वर्ष की उम्र में ही कांग्रेस की वानर सेना में शामिल हा गई थीं जो सत्याग्रहियों को पानी पिलाने जैसे छोटे-मोटे काम करता था। 1946 में पंडित नेहरू ने साराभाई को कांग्रेस पार्टी का महासचिव बनाया और उन्हें कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य की जिम्मेदारी भी सौंपी लेकिन साराभाई ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और गांधी जी के साथ नोआखली चली गईं जहां सांप्रदायिक दंगों की आग झेल रहे लोगों के बीच शांति कायम करने के काम में जुट गईं। साराभाई के इस काम के लिए उन्हें पूरी दुनिया से सराहना मिली।

इंदिरा गांधी

देश की पहली महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का नाम केवल देश ही नहीं बल्कि विश्व के चुनिंदा श्रेष्ठ प्रधानमंत्रियों में गिना जाता है। महिला होते हुए भी उन्हें आयरन लेडी कहा गया। जवाहरलाल नेहरू की बेटी होने के नाते राजनीति उनके खून में थी और इसे उन्होंने बखूबी निभाया भी। उनके कार्यकाल में भारत ने पाकिस्तान के साथ लड़ाई लड़ी जिसमें जीत भारत की ही हुई। हालांकि प्रधानमंत्रित्व काल में अपने फैसलों और सत्ता के केंद्रीकरण को लेकर उनकी कड़ी आलोचना भी होती रही। 1975 में देश में आपातकाल की घोषणा कर उन्होंने अपने आलोचकों की संख्या और बढ़ा दी। 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई।

गौर कीजिए

सबसे ज्यादा 21 फीसद महिला सांसद मध्य प्रदेश से हैं।

चेंजमेकर्स

प्रतिभा पाटिल

प्रतिभा देवी सिंह पाटिल देश की पहली महिला राष्ट्रपति बनीं। वे कांग्रेस पार्टी की कार्यकर्ता रही हैं और डा. अब्दुल कलाम आजाद को हराकर देश की बारहवीं राष्ट्रपति बनने का गौरव प्राप्त किया था। इससे पहले वे राजस्थान की राज्यपाल भी रह चुकी हैं। अपने 28 साल लंबे राजनीतिक जीवन में वे कई मंत्रालयों को संभाल चुकी हैं। प्रतिभा पाटिल की राजनीति में आशातीत सफलता के पीछे उनके पिता का हाथ माना जाता है। उनका जन्म 1934 में महाराष्ट्र के नंदगांव में हुआ था और मूलतः वे एक अधिवक्ता हैं।

मलाला यूसुफजई

12 जुलाई, 1997 को पाकिस्तान की स्वात घाटी में जन्मीं मलाला यूसुफजई आज पूरी दुनिया में लड़कियों की शिक्षा के लिए झंडा बुलंद कर रही हैं। मलाला उस वक्त सुर्खियों में आईं जब 9 अक्टूबर, 2012 को तालिबानी आतंकवादियों ने उनके सिर में गोली मार उन्हें बुरी तरह जख्मी कर दिया। तालिबानी नहीं चाहते थे कि मलाला लड़कियों की पढ़ाई को लेकर कोई काम करे। दरअसल वह अपने मौलिक गांव स्वात घाटी के खैबर पख्तूनख्वां में लड़कियों के अधिकारों और उनकी शिक्षा के लिए लोगों को जागरूक करने के काम में लगी हुई थीं जिसे आतंकवादी बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। यही वजह थी कि उन्होंने मलाला को गोली मारी। अपने साहस के लिए मलाला को वर्ष 2014 का शांति का नोबल पुरस्कार भी दिया गया।

योआनी सांचेज

क्यूबा की तानाशाही सरकार के खिलाफ लिखने वाली योआनी सांचेज को सरकार ने पत्रकार के रूप में काम करने से प्रतिबंधित तो कर दिया लेकिन वो सांचेज के भीतर की पत्रकार को नहीं मार पाई। क्यूबा में आम लोगों का हाल अपने ब्लॉग के जरिये सामने लाने वाली सांचेज बेहद साहसी महिला हैं। अपने लेखों के लिए उन्हें स्पेन के दो प्रतिष्ठित पत्रकारिता सम्मान से भी नवाजा जा चुका है। 'जेनरेशियेन वाई' के माध्यम से योआनी क्यूबा के लोगों की दुर्दशा दुनिया के सामने लाने में कामयाब हो पाई हैं। हालांकि सुरक्षा कारणों से वे किसी स्थायी जगह से नहीं लिख पाती हैं और उन्हें साइबर कैफे का सहारा लेना पड़ता है। क्यूबा सरकार तमाम कोशिशों के बाद भी योआनी को अपने मकसद से नहीं डिगा पाई है।

मैरी मैकेलीज

आयरलैंड की राष्ट्रपति मैरी इस वक्त यूरोप की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था को संचालित कर रही हैं। अपने दोबारा चुनाव के समय मैरी के सामने कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था, इससे उनकी प्रसिद्धी का अनुमान लगाया जा सकता है। अपने देश को आर्थिक मोर्चे पर सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ मैरी ने कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच के विवाद को सुलझाने में भी महती भूमिका निभाई है। बचपन से ही मैरी ने कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच के कलह को देखा है जो अक्सर खून-खराबे का रूप अख्तियार कर लेता था। मैरी ने राष्ट्रपति बनने के बाद इसे अपनी प्राथमिकता की सूची में रखा और इसके लिए ब्रिटेन के नियंत्रण वाले उत्तरी आयरलैंड की यात्रा भी करती रहीं।

आंग सान सू ची

नोबल शांति पुरस्कार से सम्मानित आंग सान सू ची आज भी म्यांमार में लोकतंत्र बहाली की लड़ाई लड़ रही हैं। अपनी पार्टी नेशनल लीग ऑफ डेमोक्रेसी के जरिये देश में लोकतंत्र के लिए संघर्ष कर रहीं सू की के राजनीतिक जीवन के पंद्रह से ज्यादा साल कैद में कटे हैं। महात्मा गांधी के अहिंसा के सिद्धांतों पर चलने वाली सू की ने अपने देश से निर्वासित होने की बजाय कैद में रहना ज्यादा सही माना। 1991 में उन्हें नोबल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सू की के पिता बर्मा की सेना में जनरल थे और बर्मा को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद करने में उनकी महती भूमिका थी। बाद में उनकी हत्या कर दी गई।

ओपरा विनफ्रे

गरीबी से उभरकर अरबपति बनीं अफ्रीकी-अमेरिकी महिला ओपरा विनफ्रे को निर्विवाद रूप से विश्व की सबसे प्रभावशाली महिला कहा जा सकता है। अपने टेलीविजन शो, फिल्मों, किताबों और रेडियो के जरिये ओपरा पूरी दुनिया की औरतों को जोड़ती हैं। ओपरा का भाग्योदय तब हुआ जब हाई स्कूल में उन्होंने रेडियो प्रस्तोता का पार्ट टाइम काम शुरू किया। इसके बाद टीवी समाचार प्रस्तोता और फिर मॉर्निंग टॉक शो से होते हुए उनका सफर ओपरा विनफ्रे शो तक पहुंचा। हालांकि इस शो की शुरुआत बेहद परंपरागत स्टाइल में हुई थी लेकिन 90 के दशक में इसने नई विधाओं को खुद से जोड़कर अपनी अलग पहचान बनाई। वैसे प्रसिद्धी के साथ-साथ ओपरा के साथ कई विवाद भी जुड़े रहे लेकिन उनका कारवां चलता रहा।

गौर कीजिए

देश की पहली लोकसभा में केवल पांच फीसद महिलाएं थीं।

चेंजमेकर्स

मिया फेरो

एक अभिनेत्री के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में मिया फेरो ने दुनिया के सामने मिसाल कायम की है। वे संयुक्त राष्ट्र की चिल्ड्रेन फंड गुडविल एंबेसेडर हैं और दुनिया के युद्धग्रस्त इलाकों में बच्चों के अधिकारों को लेकर सजग हैं। उन्होंने सूडान के सर्वाधिक आतंकग्रस्त क्षेत्र दारफुर में जागरूकता फैलाने में बड़ी प्रभावशाली भूमिका निभाई। मिया ने इस क्षेत्र में अशांति फैलाने में चीन का हाथ होने की ओर दुनिया का ध्यान दिलाया। इसके साथ-साथ मिया फेरो पोलियो के उन्मूलन के लिए भी अभियानों में शामिल रही हैं।

बारबरा वाल्टर्स

टीवी न्यूज चैनल पर शाम के प्रसारण में दिखने वाली बारबरा पहली महिला थीं। एबीसी वर्ल्ड न्यूज से जुड़ीं बारबरा अपने खास स्टाइल से पहचानी जाती हैं। अंतरराष्ट्रीय जगत में बारबरा का नाम साहसी पत्रकार के रूप में लिया जाता है। उन्होंने विश्व की कई ख्यातिप्राप्त हस्तियों का इंटरव्यू लिया है। स्पेशल रिपोर्ट में बारबरा का कोई सानी नहीं। एबीसी के दि व्यू, टुडे और 20/20 जैसे कार्यक्रमों के जरिये बारबरा ने पत्रकारिता की दुनिया में धाक जमाई है। बारबरा ने अपने पुरुष सहकर्मियों के समान अधिकार पाने के लिए लंबा संघर्ष किया है जिसके कारण पुरुषों ने उन्हें अपना दुश्मन ही मान लिया था। वर्तमान में बारबरा कई महिला केंद्रित कार्यक्रमों का संचालन कर रही हैं।

जे के राउलिंग

दुनिया को हैरी पॉटर से रू-ब-रू कराने वाली राउलिंग विश्व की सबसे सफल और प्रभावशाली उपन्यासकारों में हैं। उनकी हैरी पॉटर सीरीज की 400 करोड़ से ज्यादा प्रतियां बेची जा चुकी हैं। लेखन के अलावा राउलिंग ने कई चैरिटेबुल संस्थाओं की स्थापना भी की है जो सामाजिक असमानता और गरीबी के खिलाफ लड़ रही हैं। अपनी निजी जिंदगी के संघर्षों, अपनी मां की मौत और स्कूल के दिनों की कुछ घटनाओं ने जे के को हैरी पॉटर लिखने के लिए प्रेरित किया और देखते ही देखते उन्होंने इसकी सात संस्करणों को रिलीज कर दिखाया। वे दुनिया की पहली ऐसी महिला हैं जिन्होंने केवल अपने लेखन की बदौलत अरबपति होकर दिखाया है।

मेग व्हिटमैन

1998 में कंपनी ई बे को ज्वायन करते समय किसी ने नहीं सोचा होगा कि मेग इसे दुनिया की सफलतम कंपनियों में शामिल कर देंगी। महज तीस लोगों की इस कंपनी को मेग ने 15,500 लोगों की कंपनी और चार मिलियन डॉलर के मुनाफे को 8.64 बिलियन डॉलर का बनाकर दिखा दिया। हर समय नये नजरिये, विचार और तकनीक को अपनाने के लिए तैयार रहना मेग व्हिटमैन की खासियत है। वे बिजनेस की दुनिया में कदम रखने वाली महिलाओं के लिए एक मिसाल हैं। इस समय हेवलेट पैकर्ड कंपनी में चेयरमैन, प्रेसीडेंट और सीईओ की भूमिका निभाते हुए मेग अपनी कामयाबी के झंडे गाड़ रही हैं। 2014 में फोर्ब्स पत्रिका ने दुनिया की सौ प्रभावशाली महिलाओं की सूची में मेग को भी शामिल किया है।

हिलेरी क्लिंटन

अमेरिका की प्रथम महिला होने के नाते या अमेरिकी सीनेटर या फिर राष्ट्रपति पद के लिए सबसे फेवरेट उम्मीदवार के नाते, हिलेरी क्लिंटन ने हर जगह अपना दबदबा दिखाया है। विशेषकर राजनीति में महिलाओं की आवाज बुलंद करने से वे कभी पीछे नहीं हटीं। अमेरिका की राजनीति में अपनी दमदार जगह बनाने वाली हिलेरी को सबसे अहम महिला राजनीतिज्ञ माना जाता है। अपने पति व पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के राजनीतिक उतार के दिनों में उन्होंने न्यूयार्क के सीनेटर पद का चुनाव लड़ा और जीता और इस तरह चुनाव लड़ने वाली अमेरिका की पहली प्रथम महिला बनीं।

इंदिरा नूयी

पेप्सिको की सीईओ इंदिरा नूयी अपने बिजनेस पावर और पोजीशन की बदौलत निस्संदेह दुनिया की ताकतवर महिलाओं में शामिल हैं। पेप्सिको को ऊंचाई तक पहुंचाने के अलावा नूयी 'यम' ब्रांड की स्थापना में भी बेहद सफल भागीदार रहीं। यम ब्रांड इस वक्त विश्व की सबसे बड़ी फास्ट फूड कॉरपोरेशन है और फॉर्च्यून 500 की लिस्ट में शामिल है। 1994 में पेप्सिको से जुड़ने के बाद नूयी 2001 में कंपनी की प्रेसिडेंट बनीं और पांच साल बाद सीईओ चुनी गईं। उनके कार्यकाल में कंपनी का मुनाफा सत्तर फीसद तक बढ़ गया। उन्हीं की मेहनत और काबिलियत का असर रहा कि पेप्सी ने कोका कोला को मार्केट से बाहर कर दिया। पेप्सिको की सफलतम सीईओ होने के साथ-साथ वे महिलाओं के लिए भी प्रेरक बनीं।

गौर कीजिए

देश में 82 फीसद वयस्क पुरुष शिक्षित हैं जबकि वयस्क महिलाओं की संख्या केवल 65 फीसद है।

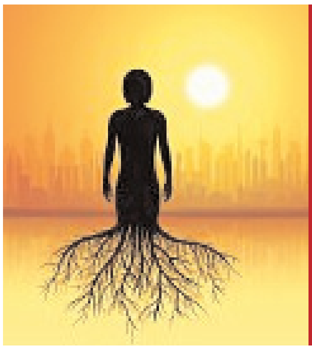

मंजरी

स्त्री के मन की

आगामी अंक में

शौचालय : सवाल अस्मिता का

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फॉन्ट का इस्तेमाल करें और **magazinemanjari@gmail.com** पर भेजें। आपके लेख 1000-1500 शब्दों से अधिक नहीं होने चाहिए। चूंकि हमारा अगला अंक जनवरी, 2015 में प्रकाशित होगा अतः इसे ध्यान में रखते हुए अपने लेख 30 नवम्बर तक भेज दें। आप अपने लेख पत्रिका की वेबसाइट **www.emanjari.com** के माध्यम से भी भेज सकते हैं।

संपादक